गृहस्थ आश्रम को सबसे कठिन आश्रम माना गया है। घर परिवार में सबके साथ रहते हुए व्यक्ति को अत्यधिक धैर्य और सहनशीलता का प्रयोग करना पड़ता है। विभिन्न प्रकार की अनुकूल और प्रतिकूल परिस्थितियों में भी अपने मन का सन्तुलन बनाए रखना पड़ता है। जंगल में अकेले रहने पर व्यक्ति कैसे जानेगा कि उसको क्रोध आ रहा है या नहीं। गृहस्थी में रहते हुए व्यक्ति का परिचय सहज ही अपने मन की कमजोरियों से होता है। अपने व्यक्तित्व के उत्थान के लिए यह आवश्यक है कि व्यक्ति धीरे–धीरे अपने क्रोध, लोभ, मोह और इच्छाओं का निराकरण करे। अपने निहित गुणों को पहचानते हुए, उन्हें सबल बनाते हुए, व्यक्ति सहज ही सुख और शान्ति के पथ पर अग्रसर हो सकता है।

सहकारी मुद्रणालय एवं प्रकाशन संस्थान मर्यादित, सेक्टर 10, भिलाई से मुद्रित।

गृहस्थों के लिए योग साधना

(सत्य अनुभवों पर आधारित)

(परम गुरु श्री स्वामी शिवानंद सरस्वती के चरण कमलों में सादर समर्पित)

प्रीति अग्रवाल

साधना का अर्थ है अपने अन्दर की पशुवृत्तियों का निराकरण। इन्सान की इन्सानियत ही उसका सबसे बड़ा धर्म है। बड़ों का सम्मान, छोटों से प्यार, दीनदुखियों की सच्चे भाव से मदद करना ही तो इन्सानियत है। यदि किसी बीमार अथवा दुःखी व्यक्ति को देखकर हमारी करुणा नहीं बहती, तो क्या हम इन्सान कहलाने लायक हैं ? स्वार्थ से परमार्थ का रास्ता मनुष्य के उत्थान का रास्ता है, उसे अपने अन्दर के ईश्वरत्व का अनुभव करवाने का रास्ता है। असीम सुख और शान्ति प्राप्त करने के लिए आवश्यक है कि व्यक्ति अपने परिवार से अलग दूसरों के लिए कुछ सोचे और करे, बिना बदले की आशा के।

प्रथम संस्करण : 1000, प्रतियाँ ज्ञानयज्ञ में निः शुल्क वितरण हेतु

ज्ञानदर्शन योगाश्रम, भिलाई के अधिष्ठाता एवं
प्रेरणा स्त्रोत परम पूज्य स्वामी देवशंकरानन्द सरस्वती
की पुण्यतिथि के पावन अवसर पर लोकार्पित।

ज्ञानदर्शन योगाश्रम, सड़क–9,
सेक्टर–10, भिलाई (छ.ग.) 24 नवम्बर 2008

योग कहता है कि प्रत्येक व्यक्ति के अन्दर एक असाधारण गुण निहित है। साधना के द्वारा व्यक्ति सहज ही अपने अवगुणों का निराकरण कर सकता है। काम, क्रोध, लोभ, तनाव और चिन्ताओं ने हमारे भीतर के इस गुण को ढक दिया है। छोटे–छोटे अभ्यासों को अगर धैर्य के साथ नियमित रूप से किया जाता है तो आश्चर्यजनक परिणाम प्राप्त होते हैं। सत्य, अहिंसा और अपरिग्रह जैसे यमों का पालन करते हुए, व्यक्ति अपने अन्दर एक असीम सुख और शान्ति अनुभव कर सकता है। यदि एक भी यम अथवा नियम को व्यक्ति जीवन में पालन कर पाता है तो उसके जीवन की धारा ही बदल सकती है। रास्ता लम्बा सही, कठिन सही परन्तु मंजिल अवश्य मिलती है। अपने व्यक्तित्व को सजाना, सँवारना और निखारना योग की अन्तिम परिणति है।

विषय सूची

क्र.	शीर्षक	पृष्ठ क्र.
1.	ऐसा अपना घर हो	01
2.	योग की बदलती रूपरेखा आधुनिक युग में	01
3.	योग का लक्ष्य	04
4.	संत – ईश्वर के प्रतिनिधि ?	06
5.	मेरा प्रथम सत्संग परमहंस स्वामी निरंजनानंद सरस्वती के संग (गृहस्थों के लिए साधना)	08
6.	सत्संग परमहंस स्वामी निरंजनानंद सरस्वती के संग – (योग और गृहस्थ)	10
7.	परमहंस स्वामी निरंजनानंद सरस्वती द्वारा प्रदत्त चार कैप्सूल योग साधना के लिए	12
8.	दैनन्दिनी साधना के चमत्कार – सत्य कथा	14
9.	भक्ति का भोजन – सत्संग परमहंस श्री स्वामी सत्यानंद के संग	15
10.	सत्संग श्री श्री रविशंकर जी के संग	16
11.	श्री श्री रविशंकर जी द्वारा कराए गए ध्यान का एक विवेचन	19
12.	पूज्य श्री श्री रविशंकर जी के श्री चरणों में – मेरा एक भाव	20
13.	यम और नियम क्यों ?	21
14.	यम और नियम की सार्थकता	23
15.	मितव्ययिता – एक यम ?	27
16.	अपरिग्रह – गृहस्थों के लिए	27
17.	ईश्वर प्रणिधान क्यों और किसलिए ?	29
18.	अनुशासन सफलता का महत्वपूर्ण सोपान	29
19.	अध्यात्म	31
20.	आसक्ति	32
21.	माया की चाल	33
22.	ज्ञान	36
23.	चेतना	38
24.	तत्त्वम् असि	38
25.	अध्ययन, मनन और निदिध्यासन	39
26.	वाणी का मौन, मन का मौन	40
27.	नाहम् कर्ता नाहम् भोक्ता, ईश्वर ही कर्ता, ईश्वर ही भोक्ता	41
28.	मन्त्र जप	42
29.	मन्त्र जप और संस्कार	43
30.	साधना के सोपान	45
31.	ब्रह्ममूहूर्त और साधना	47
32.	संकीर्तन – एक सम्पूर्ण साधना	49
33.	साधना और अहंकार	50
34.	दूरदर्शन– योग साधना में बाधा का मुख्य कारण	51
35.	परीक्षा – साधना का महत्वपूर्ण अंग	52
36.	एक कमजोर मन	54
37	मन का भोजन	55
38.	मानसिक तप और साधना	57
39.	सकारात्मक विचार	61
40.	मन का भटकना और ध्यान	62
41.	ध्यान और मैं, मेरे अनुभव	64
42.	सेवा – एक साधना	67
43.	जीवन का लक्ष्य प्रौढ़ों के लिए – सत्य कथा	69
44.	स्वार्थ और सेवा	71
45.	निष्काम सेवा – सत्य कथा	72
46.	एक छोटी सी सरल सेवा – सत्य कथा	74
47.	सेवा का सुख	76
48.	सेवा – एक सत्य अनुभव	77
49.	सेवा की राह के काँटे	78
50.	आत्मनिरीक्षण – एक महत्वपूर्ण सरल साधना	79
51.	भोग से योग की यात्रा	81
52.	गृहस्थों के लिए मेरा एक सन्देश	83
53.	दैनन्दिनी साधना	85

प्रस्तावना

"घर गृहस्थी में रहते हुए योग साधना आसान तो नहीं है" अधिकांश लोगों का ऐसा ही मत है। इसी कारण गृहस्थ अपनी आध्यात्मिक प्रगति का मार्ग स्वंय ही अवरुद्ध कर देते हैं। सुख की आकांक्षा मन में लिए, अपना सारा जीवन केवल विषय विलास से प्राप्त क्षणिक सुख के पीछे भागते ही बिता देते हैं। विषय भोगों से प्राप्त सुख तो केवल क्षणिक होता है, अपितु अनचाहे में अनेक दुःखों का कारण भी बनता है। उदाहरणतया जीभ के स्वाद की तृप्ति के लिए व्यक्ति स्वादिष्ट व्यंजन अधिक मात्रा में खाता है। और परिणाम! मोटापा और अन्य कई रोग। रोग आने पर भी अपना जिव्हा पर संयम न रख पाने के कारण, दुःख ही झेलता रहता है।

इस पुस्तिका को लिखने का एक मात्र उद्देश्य केवल यह बताना है कि गृहस्थाश्रम में रहकर भी सरलता से योग साधना की जा सकती है। व्यक्ति अगर दृढ़ निश्चय कर ले और अपने कर्तव्यों को खूब मन लगा कर, ईश्वर पूजा की तरह निबाहे, तो उसकी आध्यात्मिक प्रगति का मार्ग अवश्य प्रशस्त हो सकता है। गृहस्थाश्रम में अपने परिवार के साथ–साथ, अपने से अनजाने लोगों के लिए कुछ सोचना और करना ही आध्यात्मिक जीवन की नीव सुदृढ़ करता है।

तपस्या के लिए गृहस्थाश्रम बहुत अधिक उपयुक्त माना गया है। धैर्य, सहनशक्ति, दान और इन्द्रियों पर नियन्त्रण के द्वारा एक गृहस्थ सहज ही अपनी इच्छा शक्ति को बढ़ा सकता है। सत्य, अहिंसा और सन्तोष आदि कुछ ऐसे यम और नियम हैं जिनका एक अंश भी यदि जीवन में लाया जाए तो व्यक्ति की आन्तरिक शुद्धि स्वतः ही प्रारम्भ हो जाती है।

सेवा ही है साधना आज के युग की। प्यार ही है मुख्य भावना आज के युग की।
दान ही है कामना आज ईश्वर की।
दान जो गरीबों, वृद्धों और जरूरतमंदों को दिया जाए।
प्यार जो बेसहारा और रोगियों को किया जाए।
सेवा जो निष्काम, निःस्वार्थ भाव से की जाए।
अपने परिवार के सीमित दायरे से यदि व्यक्ति निकल पाता है।
अपने स्नेह, सुख और प्यार को दूसरों पर सेवा के रूप में लुटा पाता है।
तो सहज ही उसको प्राप्त होती है ईश्वर कृपा अनन्त।
इस अनन्त ईश्वर कृपा का अनुभव व्यक्ति अनन्त सुख शांति और आनन्द के रूप में कर पाता है।

प्रीति अग्रवाल

ऐसा अपना घर हो !

गुण सौरभ से रहे महकता, जहाँ जीवन सुखकर हो। ऐसा अपना घर हो!
विनय विवेक की नीव हो जिसमें, प्रेम प्यार की छत हो।
रहे मधुर व्यवहार सभी से, वचनों में अमृत हो।।
सहनशीलता का हो आँगन, कटुता का न जहर हो ... ऐसा अपना घर हो!

उस घर में मजबूत बनें विश्वास की सब दीवारें।
कठिन घड़ी में बन जाये सब एक दूजे के सहारे।।
खिड़की हो अनुशासन की तो विघटन का न असर हो .... ऐसा अपना घर हो!

मर्यादा की चार दीवारी में सब मर्यादित हों।
सादा जीवन, उच्च विचार से सब ही प्रबुद्धित हों।।
बड़े जनों का हो आदर और छोटों पर भी महर हो... ऐसा अपना घर हो!

सेवा और सहयोग का जिसमें हो दरवाजा सुन्दर।
चित्र नहीं चरित्र की पूजा हो जिस घर के अन्दर।।
धर्म के सम्मुख रहे सदा, सब पापों से जहाँ डर हो... ऐसा अपना घर हो!

स्वच्छ आचरण की हो बहारें, ज्ञान प्रकाश हो पूरा।
मोक्ष लक्ष्य की सीढ़ी हो, वो काम रहे न अधूरा।।
गौतम से प्रभु फरमाते हैं, अब तो शाश्वत घर हो... ऐसा अपना घर हो!

– एक संकलन

योग की बदलती रूपरेखा – आधुनिक युग में

'योग विद्या' योग विश्वविद्यालय से प्रकाशित एक मासिक पत्रिका है। इस पत्रिका में समय–समय पर प्रकाशित अनेक लेखों को पढ़कर मैं प्रेरित हुई हूँ। उनके सरल और व्यावहारिक स्वरूप को जीवन में अपनाने पर मुझे असीम शांति और प्रसन्नता का अनुभव हुआ है, जिन्हें मैं पाठकों के साथ बाँटना चाहती हूँ। **भविष्य द्रष्टा परम गुरु स्वामी शिवानंद ने सेवा का सूत्र अपने अष्टांग योग का प्रथम और महत्वपूर्ण अंग बताया।** गृहस्थ आश्रम में रहते हुए एक साधारण मानव सरलता से सेवा को अपने जीवन में अपना सकता है। निष्काम सेवा एक ऐसी सीढ़ी है, जो आत्म साक्षात्कार जैसे उच्च लक्ष्य

तक सरलता से ले जाने में सक्षम है। शांति, प्रसन्नता और आनंद तो मार्ग में स्वतः ही सेवक के अनुगामी बन जाते हैं। आज कलियुग में यम और नियम कहाँ संभव हैं ? छोटी से छोटी सेवा यदि आत्म भाव से की जाए, तो अनंत फलदायक है। 'रामायण' में क्या श्री राम के पुल बाँधने में गिलहरी ने अपना सहयोग नहीं दिया था ? उसी प्रकार जो व्यक्ति जहाँ भी है, यदि स्वयं को समाज के लिए उपयोगी बनाने का प्रयत्न करते हुए सेवा का महान यज्ञ करे तो उसका उद्धार अवश्य होगा।

महर्षि पतंजलि का योगदर्शन आज कलियुग में अत्यधिक कठिन प्रतीत होता है। केवल कुछ गिने चुने व्यक्ति, संन्यासी महापुरुष ही यम, नियम, अपरिग्रह, अस्तेय जैसे अभ्यासों को अपने जीवन में उतारने में सक्षम हैं। अशांति, राग, द्वेष, ईर्ष्या और तनाव के इस वातावरण में शारीरिक और मानसिक रोग ही चारों ओर परिलक्षित होते हैं। हर परिवार किसी न किसी समस्या से रोज़ जूझता हुआ जीवन यापन कर रहा है। सुख और प्रसन्नता का नितांत अभाव है। धन और सफलता मिलने पर मानव भौतिक सुख के साधन तो अर्जित कर सकता है, पर मानसिक सुख ? शांति ? संतोष ? आज रेशमी गद्दों पर भी मानव नींद के लिए तरस रहा है। नींद की गोलियाँ न केवल वृद्धों को अपितु युवकों को भी प्रयोग करनी पड़ती हैं। अत्यधिक तनाव, परेशानी, निर्धारित लक्ष्य को प्राप्त न कर पाने की असमर्थता आग में घी का काम करती है। हीनता और अविश्वास की गहरी जड़ें युवकों को आत्महत्या जैसे कुकर्म की ओर प्रेरित कर रही हैं। नशा भी कई युवकों का सहारा बन चुका है।

ऐसे समय में शिवानंद अष्टांग योग न केवल एक सरल मार्ग प्रशस्त करता है, अपितु सब विकारों और तनावों से मुक्ति दिलाते हुए शांति और प्रसन्नता प्रदान करता है। सेवा के इस महान यज्ञ में प्रत्येक व्यक्ति भाग ले सकता है। प्यार करना और देना ये शिवानंद योग के द्वितीय और तृतीय चरण है। प्यार का अर्थ यहाँ प्रत्येक जीव को अपनी तरह प्यार करने से है। 'वसुधैव कुटुम्बकम्' की भावना मन में दृढ़ करते हुए प्रत्येक मानव दूसरे जीव (मानव, पशु, पक्षी, कीट, पतंग, वृक्ष आदि) को प्यार करे। धर्म, देश, जाति, लिंग जैसे क्षुद्र पृथकता के द्योतक मूल्यों का हनन सबको करना ही होगा। हम सब उस परम पिता ईश्वर की संतान हैं। भाईचारा और प्रेम ही हमारे जीवन का लक्ष्य हो। 'सारा विश्व प्रभु की अद्वितीय कृति है' यह भाव मन में करने से अन्याय और अत्याचार स्वतः ही समाप्त हो जाएँगे। जीवन की क्षणभंगुरता पर विचार करने से हम स्वतः ही निष्काम रहते हुए सब प्राणियों को प्रेम करते हुए ईश्वरीय कृपा और अनंत संपदा के सहज ही स्वामी बन सकते हैं। आसक्ति, राग, द्वेष, ईर्ष्या, लोभ, मोह, काम, क्रोध जैसे दुर्गुण स्वयं ही समाप्त हो सकते हैं। धैर्य रखते हुए यदि निरंतर इस भाव को दृढ़ किया जाए, तो सफलता निश्चित है। क्या प्यार भौतिक स्तर से उठकर नहीं किया जा सकता ? प्यार

का प्रतिदान तो पेड़–पौधे भी फूल और फल के रुप में देते हैं। फिर मानव तो संवेदनशील प्राणी है। निःस्वार्थ प्रेम पत्थर को भी पिघला सकता है। अविश्वास और असत्य के इस युग में निःस्वार्थ प्रेम दुर्लभ है। फिर मानव किस पर विश्वास करे ? सेवा और परोपकार स्वार्थ रहित नहीं है। जैसा हम दूसरों से चाहते हैं, वैसा ही उनके साथ धैर्यपूर्वक निःस्वार्थ भाव से करें तो कुछ ही समय में दूसरा व्यक्ति हमारे प्रति प्यार से भर उठेगा। केवल आवश्यकता है धैर्य और सतत प्रयास की।

तीसरा महत्वपूर्ण चरण है देना। स्वामी सत्यानंद ने देना एक अत्यधिक व्यावहारिक रुप में स्वयं के ज्वलंत उदाहरण से विश्व के सम्मुख प्रस्तुत किया है। 1995 में श्री स्वामी जी ने राजसूय यज्ञ का शुभारम्भ किया। पूरे विश्व में योग का ध्वज लहराने के पश्चात् उन्होंने स्वयं को दिग्विजयी घोषित करते हुए शतचण्डी यज्ञ के रूप में बारह वर्ष तक इस यज्ञ को संपादित करने का संकल्प लिया। स्वामी जी के अनुयायी जानते हैं कि वह तो एक फक्कड़ संन्यासी हैं। फिर इतना रुपया कहाँ से आएगा ? परंतु ईश्वर की असीम अनुकम्पा से इस वर्ष उनका यह संकल्प पूर्ण होने जा रहा है। गत वर्ष 2006 के शतचण्डी यज्ञ में भाग लेने का सौभाग्य मुझे प्राप्त हुआ। लगभग 5 लाख निर्धन ग्रामीणवासियों को देवी माँ के प्रसाद स्वरूप उनकी आवश्यकतानुसार कंबल, चटाई, बर्तन, चावल सप्रेम भेंट किये गए। रिखिया बिहार का एक अत्यधिक निर्धन और पिछड़ा ग्रामीण क्षेत्र है। वहाँ स्वामी जी ने कई वर्ष तपस्या करने के पश्चात् इस पावन यज्ञ का शुभारम्भ किया। उस क्षेत्र में एक स्कूल स्थापित किया और आस–पास के गाँवों के लगभग 1500 कन्याओं और बालकों को शिक्षित करने का संकल्प लेकर उसको कार्यान्वित किया। इस यज्ञ का संचालन इन्हीं प्रतिभाशाली बच्चों के द्वारा किया गया। अंग्रेजी, संगीत, कम्प्यूटर जैसे आधुनिक विषयों को पढ़ते हुए ये बच्चे मंच का संचालन कुशलता से कर रहे थे। नित्य प्रतिदिन प्रसाद स्वरूप नए वस्त्र स्वामी जी उनको सप्रेम भेंट करते थे। रोज़ उन सुंदर पोशाकों से सजे हुए ये कन्या और बटुक (बालक) किसी सुंदर फुलवारी के फूलों से कम नहीं लग रहे थे। पूज्य गुरुदेव ने इन कन्याओं और बटुकों को ईश्वर का रूप मानकर न केवल स्वयं पूजा अपितु पण्डाल में उपस्थित लगभग 10,000 अनुयायियों को भी उनको ईश्वर की, देवी माँ की कृपा प्राप्त करने का एक मात्र साधन बताया। यज्ञ में भाग लेने वाले सभी भक्तों को भी पुस्तकें और वस्त्र देवी माँ के प्रसाद स्वरूप भेंट किये गये। देना, देना और देना, यह परम गुरु शिवानंद योग का तृतीय चरण है। और स्वामी सत्यानंद ने इसे एक व्यावहारिक रूप दिया है। कन्या भोज को भी उन्होंने देवी की पूजा, आराधना का एक महत्वपूर्ण अंग बताया। उन्होंने स्पष्ट शब्दों में बताया कि सरल, निष्कपट हृदय में प्रभु की कृपा प्राप्त की जा सकती है। बच्चे तो स्वयं ईश्वर का स्वरूप हैं। अतः यदि हम वहाँ से वापस आकर किसी

गरीब बच्चे को भगवान के रूप में देखते हुए कुछ दे सकें, तो हमारी पूजा और वहाँ जाना सफल होगा। आज कलियुग में जहाँ स्वार्थ, छल, कपट का सर्वत्र बोलबाला है, ऐसा निःस्वार्थ प्रेम ? सहज ही विश्वास नहीं होता। वहाँ पर एक असीम शांति का आभास प्रत्येक व्यक्ति कर रहा था। भाव से गाए गए भजन सबको मोहित कर रहे थे। क्या प्रत्येक व्यक्ति जीवन में सुख, शांति और प्रसन्नता प्राप्त नहीं करना चाहता ?

तो, आओ, जागो ! आधुनिक परिवेश में योग के इस नए आयाम को जीवन में अपनाते हुए, आसन, प्राणायाम और ध्यान के द्वारा अपने जीवन को दिव्यता की ओर अग्रसर करें। एक दिव्य जीवन ही सुखी जीवन है। दिव्यता की आभा से न केवल स्वयं को अपितु संपूर्ण मानव जाति को ओत–प्रोत कर दें।

योग का लक्ष्य

आधुनिक युग विज्ञान का युग है। शिक्षित वर्ग अपने स्वास्थ्य के प्रति अत्यधिक सजग है। विभिन्न वैज्ञानिक संशोधनों के द्वारा योग के अनेक आयामों का प्रचलित होना स्वाभाविक है। परन्तु योग के केवल एक आयाम 'हठ योग' को ही आज योग के संपूर्ण रूप में प्रस्तुतीकरण को वर्तमान युग की विडंबना न कहें तो क्या कहें ? योग का क्षेत्र अत्यन्त विशाल है। योग को केवल शरीर तक ही सीमित करना कदापि उचित नहीं है। जब व्यक्ति किसी पीड़ा या रोग से ग्रसित होता है, तब वह योग की शरण ग्रहण करता है। और रोग के निदान के पश्चात् उसे रोग निदान का एक विज्ञान समझते हुए वह इसे छोड़ देता है।

परन्तु रोग के निदान के पश्चात् ही योग के वास्तविक लक्ष्य की प्राप्ति के लिए यदि व्यक्ति पुरुषार्थ करता है तो उसे एक से एक आश्चर्यजनक निधियों की उपलब्धि होती है। ये निधियाँ संसार की धन दौलत से एकदम हटकर, एक नए खजाने का द्वार योग साधक के समक्ष खोल देती हैं। योग एक ऐसी कुंजी प्रदान करता है जो व्यक्ति को अनन्त से जोड़ते हुए अपने वास्तविक स्वरूप का ज्ञान करा देती है। अधिकतर व्यक्ति खाने, पीने और सोने को ही अपने जीवन का लक्ष्य मान बैठे हैं। मैं कौन हूँ ? मैं कहाँ से आया हूँ ? मेरे जीवन का क्या उद्देश्य है ? ये कुछ प्रश्न ऐसे हैं जिन्हे प्रत्येक व्यक्ति को स्वयं से नित्यप्रति पूछना चाहिए। जब अभ्यास से व्यक्ति धीर–धीरे इन प्रश्नों की गहराई को समझने लगता है, तभी उसका मनन और चिन्तन आरम्भ होता है। योग एक संपूर्ण विज्ञान है, जो व्यक्ति के शारीरिक, मानसिक और आध्यात्मिक उत्थान में पूर्णयता सक्षम है। शरीर का स्वास्थ्य महत्वपूर्ण अवश्य है, पर वह योग की अन्तिम परिणति नहीं है। स्वस्थ शरीर में ही योग साधना संभव है। मन के अन्दर में छिपी हुई नकारात्मक वृत्तियाँ जैसे चिन्ता, भय, उद्वेग, क्रोध व्यक्ति की संपूर्ण कार्य क्षमता पर ग्रहण लगा देती हैं। नकारात्मकता व्यक्ति के

वास्तविक स्वरूप को ढकते हुए उसे दृष्टि से ओझल कर देती है। संसार में ही रह कर विभिन्न भोगों को भोगते हुए मानव उन्हीं में पूर्णतया लिप्त रहता है। धन मिलने से सुख और धन न मिलने से दुःख, यही मानव जीवन का उद्देश्य कदापि नहीं है। दुःख और सुख के इस चक्रव्यूह से यदि मानव बाहर आ सके तो जीवन के एक नए महत्वपूर्ण पक्ष से उसका परिचय होता है।

भगवान श्री कृष्ण ने गीता में 'द्वन्द्वैविनिर्मुक्ता' की चर्चा पुनः–पुनः की है। उसका अर्थ सुख–दुःख और राग द्वेष से बाहर निकलना ही तो है। जब व्यक्ति योग में प्रगति करता है तो स्वयं की इन नकारात्मक वृत्तियों के प्रति सजग बनता है। और धीरे–धीरे अभ्यास से वह इन नकारात्मक वृत्तियों का प्रतिस्थापन सकारात्मक वृत्तियों से करने में सक्षम होता है। यह बहुत ही धैर्य की साधना है। वह मन जिसको वर्षों तक नकारात्मकता में रहने का अभ्यास है, शीघ्रतापूर्वक सद्विचारों को स्थायी रूप से ग्रहण नहीं करता। पुनः पुनः नकारात्मक विचार उसके मन को उद्वेलित करते हैं। अहम् एक दुर्भेद्य कवच के रूप में उसके मार्ग की सबसे बड़ी बाधा बन जाता है।

योग की विभिन्न सरल साधनाएँ यदि धैर्य और उत्साह पूर्वक व्यक्ति अपनाता है, तो शनैः शनैः उसका मन प्रशिक्षित होने लगता है। धैर्य परिणाम लाता है। जब अन्तर्मन सकारात्मकता से ओत–प्रोत हो जाता है, तब होती है उसकी आध्यात्मिक यात्रा की तैयारी। **"सेवा आध्यात्मिक यात्रा की पहली सीढ़ी है।" – स्वामी निरंजनानंद सरस्वती**

मन स्वतः निष्काम सेवा के लिए प्रेरित होने पर, व्यक्ति साहस और धैर्य के शस्त्र का प्रयोग करते हुए, अपनी आध्यात्मिक यात्रा का शुभारंभ करता है। और यही वह बिन्दु है जहाँ से व्यक्ति स्वयं को जानना और पहचानना प्रारम्भ करता है। हम अभी स्वयं को कहाँ जान पाए हैं ? कहाँ अपनी क्षमताओं को पहचान पाए हैं ? सेवा के इस दिव्य मार्ग पर कदम बढ़ाते हुए धीरे–धीरे सकाम वृत्ति निष्काम में परिवर्तित होती है। 'नाहं कर्ता, नाहं भोक्ता' की सूक्ति का अभ्यास करने से अहंकार की जड़ें धीरे–धीरे उखड़ने लगती हैं। ईश्वर की कृपा से प्रगति द्रुत गति से संभव है। ईश्वर कृपा ही व्यक्ति को इस मार्ग का अनुगामी बनाती है।

परम गुरु स्वामी शिवानंद के अष्टांग योग का प्रथम चरण सेवा है। प्रत्येक व्यक्ति अपनी शारीरिक, मानसिक क्षमता के अनुसार, अपने जीवन की परिस्थिति के अनुरूप किसी भी सेवा का चुनाव करते हुए यदि निष्काम भाव को अपने जीवन में स्थापित कर पाता है तो उसे असीम सुख और आनन्द की प्राप्ति होती है। **'सेवा, प्यार, दान, शुद्धि। अच्छे बनो, अच्छा करो, दयालु बनो।' –स्वामी शिवानंद**

जब हम परम गुरु स्वामी शिवानंद के इन चरणों को अपने जीवन में व्यावहारिक रूप में अपनाते हैं तब अपनी वास्तविक कार्य क्षमता को पहचान पाते हैं। वह आन्तरिक शान्ति, प्रसन्नता जिस पर हमारा जन्मसिद्ध अधिकार है, हम से बहुत दूर है। योग के इस सरल दिव्य मार्ग पर चलते–चलते हमारा तन, मन, आत्मा उज्जवल हो जाते हैं। और हम एक गहन शांति और आनन्द के स्त्रोत से जुड़ते हैं जो हम सब के भीतर ही है। यही योग का वास्तविक लक्ष्य है।

तो आओ ! योग को हम केवल एक चिकित्सा पद्धति के रूप में न जानें, इसे अपने जीवन का एक अभिन्न अंग बनाएँ और स्वामी जी के अष्टांग योग की साधना करते हुए 'वसुधैव कुटुम्बकम्' की भावना को अपने जीवन का लक्ष्य बनाएँ। भारत की खोई हुई संस्कृति का गौरव पहचानें। भारत को विश्व के चरम शिखर पर पुनः स्थापित करें।

संत – ईश्वर के प्रतिनिधि?

संतो के मौन में भी वाणी है, ध्वनि है।
वाणी है ध्वनि है गर किसी के पास कान हैं तो।
कान हैं आन्तरिक जो सुन सके उस सूक्ष्म ध्वनि को।
सूक्ष्म ध्वनि जो उनके रोम–रोम से मुखरित हो रही है।
उनके रोम–रोम से जन–जन के कल्याण की ही दुआएँ निकल रही।
हो जिसके पास शक्ति, हो जिसके पास दृष्टि वह दिव्य।
वो ही समझ सकता है। वो ही देख सकता है।
अर्जुन को दिए भगवान ने जब दिव्य चक्षु कुरुक्षेत्र के मैदान में।
तभी तो देख पाया वह विराट् रूप भगवान का।
जाना पाया वह कि युद्ध केवल उसको नाम मात्र के लिए करना है।
वह तो केवल एक निमित्त है, ईश्वर सब कुछ पहले ही कर चुके हैं।
अपने प्रिय भक्तों का मान रखने के लिए प्रभु उनको अपना माध्यम चुनते हैं।
माध्यम चुनते हैं, उनको अपनी ऊर्जा और शक्ति प्रदान करते हैं।
प्रभु की ऊर्जा और शक्ति से ही उनके भक्त जगत में चमत्कार कर पाते हैं।
सच्चे भक्त जानते हैं कि प्रभु ही कर्ता हैं, अतः अपने कर्म उन्हीं के चरणों में समर्पित करते हैं।
प्रुभु की असीम कृपा से कर्मो के बन्धन से मुक्त रहते हैं।

लेते हैं प्रभु परीक्षाएँ पल पल में उनकी।
यदि भक्त साहस और दृढ़ता से उन बाधाओं को पार करते हैं; तो प्रभु स्वयं उनको आकर गोद में उठाते हैं।
है ये मार्ग दिव्य सुख और आनन्द का; क्योंकि प्रभु स्वयं इसको आकर निष्कंटक बनाते हैं।
संत तो प्रभु के ही प्रतिनिधि हैं। अतः उनका दिल से सम्मान करो।
उनके मौन और वाणी दोनों से शिक्षा ग्रहण करो।
मत करो भर्त्सना उनके कृत्यों की। रखो खुला अपना मन उनके प्रत्येक व्यवहार के प्रति।
पाओगे तुम निधियाँ अनेक, गर ऐसा कर पाओगे।
धीरे धीरे संतों की वाणी व्यवहार के मनन चिन्तन से, तुम इस धरा पर ही मुक्त हो जाओगे।
संत तो जीते हैं सत् में, सत् ही उनका चरित्र है। सत् ही उनका व्यवहार है।
कुछेक कमियाँ उनकी मानव देह के कारण हैं।
तुम देह से ऊपर उठो। उनके अन्दर झाँकने का प्रयत्न करो।
जानो कि गूढ़ रहस्य है उनके प्रत्येक शब्द में, प्रत्येक कृत्य में।
जिस रोज तुम ये जान जाओगे, समझ जाओगे। संतो की ही कृपा से उन पर अपना विश्वास बढ़ा पाओगे।
एक विश्वास के आने से होगा तुम्हारा जीवन सफल।
बढ़ेगी श्रद्धा तुम्हारे जीवन में नितप्रतिदिन।
तब तुम संत का ईश्वरत्व देख पाओगे, महसूस कर पाओगे।
तब तुम बनोगे संत के प्यारे। संसार के विषय भोग तो स्वयं ही छूट जाएँगे।
अनुभव करो उस दिव्य ऊर्जा का, जो संत के चारों ओर है।
प्रयत्न करो। अभिलाषा रखो। वासना रखनी है तो संत के सन्निध्य की रखो।
वासना रखनी ही है तो संत की कृपा की रखो।
संत जब कृपा करेंगे तो तुम्हें शुद्ध करेंगे।
अपने चरणों में बिठाएँगे। मालामाल करेंगे और ऊँगली पकड़ कर तुम्हें भगवान के पास ले जाएँगे।
बनाएँगे तेरा जीवन धन्य । इसी धरा पर स्वर्ग है तुम्हें पल पल अनुभव कराएँगे।
संसार में रहते हुए ही तुम्हे पल पल मुक्ति का अनुभव कराएँगे।
होगा जीवन तुम्हारा सार्थक। यश, प्रसिद्धि और धन तो स्वयं ही चले आएँगे।

संत का मान करो। उसका दिल से सम्मान करो। उसे भगवान का प्रतिनिधि मानो।
करोगे समर्पण जिस रोज़ तुम सद्गुरु के चरणों में।
भर देंगे वो झोली तुम्हारी अपने कृपा फल से।
चमका देंगे तुम्हें। करेंगे सफाई तुम्हारी। और एक काबिल इंसान बना देंगे।
मत करो तुम शक उन पर। जगाओ दृढ़ विश्वास उन पर
विश्वास ही तुम्हें उनकी कृपा दिलाएगा।
मत करो बुद्धि का प्रयोग अपनी, ये तुम्हें संत के अवगुण दिखाएगी।
ले जाएगी तुम्हें दूर उनके चरणों से, संकल्प विकल्प अनेक कराएगी।
चुनना तुम्हें है। बुद्धि या भावना? विश्वास या अविश्वास?
विश्वास करोगे तो पाओगे। अविश्वास करोगे तो खोओगे।
इस विश्वास और अविश्वास के झूले में ही इस बहुमूल्य जीवन को खोओगे।
निर्णय तुम्हें करना है। मोक्ष या बन्धन? स्वतंत्रता या परतंत्रता? सुख या दुःख? आनन्द या विषाद?

मेरा प्रथम सत्संग परमहंस स्वामी निरंजनानंद सरस्वती के संग–गृहस्थों के लिए साधना

'सन् 2005 में, मुझे स्वामी निरंजन के दर्शनों का सौभाग्य पहली बार प्राप्त हुआ। उनके चेहरे के तेज ने मुझे अन्तर्तम तक प्रभावित किया। अनेक वर्षों से ज्ञान दर्शन योगाश्रम, भिलाई में जाते हुए मैंने उनकी कई पुस्तकों और लेखों को पढ़ा, मनन और चिन्तन किया था। परन्तु उनका दर्शन मेरे जीवन का एक अद्भुत अनुभव था। भिलाई के सब दर्शनार्थियों के साथ राजनांदगांव में, उनके पास जाने का मौका आधे घंटे में ही मिल गया। अनेक लोगों के प्रश्नों के उत्तर वह सरलता से देते जा रहे थे। कईयों की माला भी अपने मस्तक से लगा कर चार्ज कर रहे थे। मैंने उनसे पूछा, " स्वामी जी मन बहुत भटकता है, क्या करूँ?" एक क्षण की भी देर किये बिना उन्होंने जवाब दिया, "उसी को तो मैनेज (प्रशिक्षित) करना है।" दूसरा प्रश्न मैंने पूछा, "कितना समय लगेगा? इस प्रश्न का उन्होंने कोई जवाब नहीं दिया। अपने अन्तर की व्यथा दबाकर मैं हाल में चली गई, जहाँ उनका प्रवचन होना था।

कार्यक्रम की शुरूआत कीर्तन से हुई और स्वामी जी ने भी दो भजन सुनाए। उनकी सरलता और हँसमुख व्यवहार ने मुझे अन्तर्तम तक प्रभावित किया। उन्होंने कहा – "जीवन

में अच्छाई का पलड़ा भारी करते जाओ, तो बुराई स्वतः ही निकल जाएगी। आज सब ईश्वर दर्शन करना चाहते हैं। आत्मसाक्षात्कार करना चाहते हैं। मान लो आत्मसाक्षात्कार हो भी गया तो उसके बाद क्या करोगे? जब कुम्हार घड़े को बनाता है, फिर भट्टी में पकाता है। पक जाने का पश्चात् उस घड़े की उपयोगिता है पानी को ठंडा करना। उसी प्रकार यदि 40 वर्ष की उम्र में आत्मसाक्षात्कार हो जाता है तो उसके बाद आती है सेवा, दूसरों के कल्याण के लिए। परमगुरु स्वामी शिवानंद के जीवन से संबंधित कुछ चित्र दिखाते हुए उन्होंने सेवा के महत्व का संदेश दिया।

प्रवचन के पश्चात् एक बार पुनः दर्शनार्थियों की लाईन में लग कर मुझे उनके समीप जाने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। उनकी ऊर्जा, उनकी करुणा ने मुझे अन्दर तक एक बार फिर गहन शांति से भर दिया। उसी वर्ष नवम्बर माह में रिखिया पीठ में होने वाले शतचण्डी यज्ञ से दो दिन पहले मुझे पुनः उनके दर्शनों और सत्संग का सौभाग्य प्राप्त हुआ। मुझे और मेरे पति को उन्होंने अपने कीमती समय में से 35 मिनट का समय दिया। हम दोनों के प्रत्येक सवाल का न केवल उत्तर दिया अपितु एक संन्यासी को हमे यज्ञशाला, पंचाग्नि साधना स्थल और भोलेनाथ की समाधिस्थल आदि दिखलाने का भी आदेश दिया। तब मैंने गृहस्थी में रहते हुए "साधना कैसे की जाए" इसके बारे में प्रश्न पूछे। उन्होंने कहा, "घर का पूरा काम हो जाने के बाद, अपने कर्तव्यों को निभाने के बाद, यदि आप 10 मिनट भी साधना कर पाती हैं तो बहुत है। घर का काम छोड़ कर बच्चों और पति की उपेक्षा करके की गई साधना का कोई अर्थ नहीं है।'' उनके इस जवाब से मेरे पति बहुत प्रसन्न हुए। "जैसे एक माली बगीचे में से जंगली निकालता जाता है, वैसे ही धीरे–धीरे अपने अवगुणों को दूर करते जाना। सद्गुणों की स्थापना करते करते अवगुण तो स्वतः ही निकल जाते हैं।" मैंने उनसे पूछा, "इच्छाएँ कैसे समाप्त होंगी?" उन्होंने कहा, "संसार में रहते हुए इच्छाएँ समाप्त नहीं हो सकती। इच्छाएँ तो आती रहेंगी।" योग विद्या में उनके एक लेख में मैंने पढ़ा " इच्छाओं की दिशा को यदि स्वार्थ से परमार्थ की ओर मोड़ दिया जाता है तो इच्छाओं का होना भी सार्थक हो जाता है। व्यक्ति अपने और अपने परिवार के ऊपर से ध्यान हटा कर जब दूसरों के विषय में सोचने लगता है तो उसके अपने दुःख स्वतः ही कम हो जाते हैं।"

उन्होंने कहा, "आसक्ति, राग, द्वेष को धीरे–धीरे कम करते जाना। पूजा में तन्मयता ही सफलता की कुंजी है। पौधा अभी छोटा है। साधना का पानी भगवद् नाम के रूप में देते जाना। अच्छे कर्मों की खाद डालते जाना। अपने मन को सात्विक विचारों से भरना और सात्विक बनाना। सात्विक का अर्थ है गीता के 12वें अध्याय में भगवान श्री कृष्ण ने जो कुछ भी कहा है, उसको जीवन में अपनाने का प्रयत्न करना। धीरे–धीरे थोड़ा थोड़ा रोज करते जाना। साधना में अगर कोई अनुभव आते हैं तो उनमें अटके नहीं रहना। आगे बढ़ते जाना।

महत्वाकांक्षाओं के पीछे नहीं भागना, जो आज की जरूरत है उसके लिए प्रयत्न करना। अपने मन की मिट्टी में अच्छे विचारों के बीज बोना।''

उनके दर्शनों और सत्संग ने मेरे अन्तर्मन को एक दिव्य अनुभूति से ओत प्रोत कर दिया। उनकी पुस्तकों से पढ़कर जो अनेक शंकाएँ मेरे मन में थीं, उनका भी उन्होंने समाधान किया। कार्यक्रम शुरू होने में दो रोज बाकी थे। वह अत्यधिक व्यस्त थे। बीच–बीच में उठ कर फोन भी सुन रहे थे। मेरे पति ने भी रिखिया के बटुकों और कन्याओं के विषय में अनेक प्रश्न उनसे पूछे। उन्होंने कहा कि, "हम यहाँ हर गरीब परिवार के बड़े लड़के को रोजगार का साधन मुहैया करवाते हैं और एक छोटे बच्चे की स्कूल की यूनिफार्म और पुस्तकें देते हैं। कई लोग हमसे चलचित्र देखने के लिए पैसे माँगने भी आ जाते हैं। पर हम उनको पैसे नहीं देते और कहते हैं कि हम तो संन्यासी हैं। लोग हमे एक अच्छे कार्य के लिए पैसा दान के रूप में देते हैं। उस पैसे का हम दुरुपयोग नहीं कर सकते।"

उनकी इतनी स्पष्टवादिता देखकर हम दोनों धन्य हो गये। इतने बड़े संत और इतनी सरलता! मुझे उनको देख कर लगा कि वाकई ये एक फलदार घने वृक्ष की भाँति हैं जो फल लगने से झुक गया है और अनेक पथिकों को अपनी छाया और फल से तृप्त कर रहा है। सच्चा बड़प्पन तो नम्रता में ही है, अभिमान में नहीं। ये शिक्षा मुझे उन्होंने अपने व्यवहार से दी, शब्दों से नहीं। उन्होंने मुझे कहा, "हम आपके साथ हैं।" उनके इस वाक्य ने तो मानो मुझे आकाश में ही पहुँचा दिया। शब्द उस अनुभव को बयान करने में नितान्त असमर्थ हैं।

क्या बयान करूँ उनकी करुणा, उनकी दया का! मैं हतप्रभ थी! नत्मस्तक थी! अभिभूत थी! मुझे ऐसा लगा कि उन्होंने मेरा प्याला भरा नहीं, परन्तु भर कर छलका दिया। उस थोड़े से समय में उन्होंने मुझे एक गहन शान्ति और ऊर्जा से भर दिया। उस सत्संग के पश्चात् मेरे जीवन की दिशा ही बदल गई। घर के कार्यों को करते करते भी मैं उनके वचनों का मनन, चिन्तन करती रहती। धीरे–धीरे, थोड़ा थोड़ा नियमित रूप से करते करते ही आज मैं लेखिका बन पाई हूँ और अपने अनुभवों से लाखों लोगों को प्रेरित कर पा रही हूँ। अपने अवगुणों का निराकरण भी कर पा रही हूँ।

सत्संग परमहंस स्वामी निरजनानंद सरस्वती के संग

(योग और गृहस्थ)

3 जुलाई 2006 का दिन भिलाई वासियों के लिए एक नूतन संदेश ले कर आया। हवा में हल्की सी ठण्डक और मन में परमहंस स्वामी निरंजन के आने की अभिलाषा ने प्रत्येक व्यक्ति को नूतन चुस्ती और स्फूर्ति से भर दिया। स्वामी जी का आश्रम में आगमन

लगभग 9 बजे के आसपास हुआ। द्रुतगति से चलते हुए, श्रद्धालुओं को आशीर्वाद देते हुए, स्वामी जी ने सर्वप्रथम साधना मन्दिर में गुरु पादुका पूजन पुष्पों के साथ किया। दिवंगत आचार्य स्वामी देवशंकरानंद जी को भी उन्होंने पुष्प अर्पण करते हुए कुछ क्षण के लिए याद किया। कार्यक्रम के आरंभ में भिलाई वासियों के द्वारा कीर्तन गाया गया। स्वामी जी के साथ आए दो संन्यासियों ने दो कीर्तन गाए जो बेहद मार्मिक होने के साथ–साथ ज्ञान का संदेश भी दे रहे थे।

संगीत की स्वर लहरी से मन एकदम शान्त हो गया। तब स्वामी जी ने सत्संग प्रारम्भ किया। उनके शब्दों में – "योग की परिभाषा अनेक व्यक्तियों द्वारा दी गई है। साधारणतया योग का अर्थ जुड़ना अर्थात् आत्मा का परमात्मा से मिलना आदि दिया जाता है। हम इन परिभाषाओं को नहीं मानते क्योंकि जिन्होंने ये परिभाषाएँ दी थी वो योगी नहीं थे। मान लो एक स्विच बोर्ड पर दो प्लग पाईंट लगे हुए हैं। आज आपका प्लग सांसारिकता के सॉकेट में लगा हुआ है। अतः आप विषय भोगों में रस लेते हो, भौतिकतावाद में उलझे हुए रहते हो और सुख दुःख के झूले में झूलते रहते हो। कभी स्वाद में अधिक गरिष्ठ या मसालेदार भोजन कर लेते हो तो रोगोंसे पेरशान होते हो। आज योग को एक चिकित्सा विज्ञान के रूप में अनेक व्यक्ति, लोगों के घर जा कर भी सिखा रहे हैं। योग का यह दृष्टिकोण बहुत ही क्षुद्र है। योग जीवन जीने की कला है। योग एक ऐसी विद्या है जो व्यक्ति के अन्तर्तम को प्रभावित करते हुए उसका पूरा जीवन बदल सकती है। अपने जीवन के प्लग को सांसारिकता के सॉकेट से निकाल कर आध्यात्मिकता के सॉकेट में लगाना ही योग का परिणाम है। जीवन में व्यक्ति प्रकृति के तीन गुणों से प्रभावित होता है। वे गुण हैं सत्त्व, रजो और तमो गुण । जब आप योग से जुड़ते हैं तो आपकी तमो गुण प्रवृत्ति धीरे–धीरे रजो गुणी और फिर सत्त्व गुणी प्रवृत्ति में बदलने लगती है। आज अधिकांश व्यक्ति रोग होने पर ही योग की शरण में आते हैं। 1–2 साल में जब आराम हो जाता है तब योग को छोड़ देते हैं। अतः आप सब योगाभ्यासी हो। योग के साधक बहुत कम हैं। जो योग के द्वारा निर्देशित लक्ष्य की ओर बढ़ने का प्रयत्न करता है वही योग साधक होता है। प्रत्येक योग के भिन्न–भिन्न लक्ष्य हैं। कर्म योग का लक्ष्य है कर्म की आसक्ति का त्याग करते हुए, कर्मों के प्रभावों से स्वयं को मुक्त करना। राजयोग का लक्ष्य है जीवन में अनुशासन लाना। चित्त की वृत्तियों का निरोध करते हुए मानसिक उथलपुथल को शान्त करना। द्रष्टा भाव को जगाना और सम भाव से जीवन में जो कुछ भी घटित हो रहा है उसको देखते जाना। आज गृहस्थ को आवश्यकता है कि वो अपने विचारों को देखे, समझे और एक नई दिशा दे। कामनाएँ तो कभी भी पूरी नहीं होंगी।

''संसार में रहते हुए, विषय भोगों को देखते हुए, व्यक्ति सहज ही उनको पाने की

इच्छा करता है। उनके बारे में सोचता है। जब उसकी इच्छा पूरी नहीं होती तो उसको क्रोध आता है। क्रोध आने से मन में अव्यवस्था और असंतुलन आता है। तब व्यक्ति कामना से मोहित हो जाता है। उसको सत्य, असत्य , उचित और अनुचित किसी का भी ज्ञान नहीं रह जाता। ऐसे में ज्ञान समाप्त हो जाता है व्यक्ति की मृत्यु मानसिक रूप से हो जाती है। (गीता – II, 62,63) इसका अर्थ है कि व्यक्ति का कोई सकारात्मक दृष्टिकोण नहीं रहता। कोई रचनात्मक व्यवहार नहीं रहता। वह अपनी वासना में ही उलझा रहता है। उसकी प्रवृत्ति बहिर्मुखी हो जाती है। और तब व्यक्ति निरंतर तनाव, चिंता, परेशानी और दुःख में ही जीता है।

''योग के द्वारा व्यक्ति अपने मन को अनुशासित करते हुए, धीरे–धीरे अभ्यासों के द्वारा अपने शरीर को स्वास्थ्य की ओर ले जाता है। विभिन्न मंत्रों के द्वारा शरीर में सूक्ष्म स्तर पर परिवर्तन होते हैं और धीरे धीरे व्यक्ति का दृष्टिकोण बदलने लगता है। प्राणायामों के द्वारा व्यक्ति के अन्दर ऊर्जा का संचार होता है जो व्यक्ति के मन को प्रफुल्लित बनाता है। जो व्यक्ति योग के छोटे–छोटे अभ्यासों को दैनिक कार्यक्रम में अपनाता है वह योग का पूरा लाभ उठाते हुए, एक यौगिक जीवन जी सकता है।

''जब व्यक्ति अपने जीवन का प्लग सांसारिकता के सॉकेट से निकाल कर आध्यात्मिकता के सॉकेट मे लगाता है तो उसका व्यवहार स्वार्थ से परमार्थ की ओर मुड़ता है। सेवा, प्यार और दान करते हुए वह अपने से अलग दूसरों के बारे में कुछ सोचने लगता है। तब उसके जीवन में योग की शुरूआत होती है। योग व्यक्ति की शारीरिक, मानसिक और आत्मिक उन्नति का मार्ग प्रशस्त करता है।''

परमहंस स्वामी निरंजनानंद सरस्वती द्वारा प्रदत्त

(चार कैप्सूल योग साधना के लिए)

रायपुर योग सम्मेलन के पश्चात् 3 जुलाई सन् 2006 को परमहंस स्वामी निरंजन ने कुछ घंटे का समय भिलाईवासियों के लिए निकाला । सत्यानंद योग की स्वर्ण जंयती के कारण स्वामी जी अत्यधिक व्यस्त थे राजनांदगाँव में। दिव्य कीर्तन और भजनों के साथ इस कार्यक्रम का शुभारंभ हुआ। संगीत की उस गंगा में डूबते हम सब भक्तों का मन एक दूसरी ही दुनिया में पहुँच गया। संगीत के द्वारा मन एकदम शान्त हो गया।

स्वामी जी के सत्संग के कुछ अंश मैं यहाँ लिपिबद्ध कर रही हूँ। स्वामी जी के शब्दों में – आज मनुष्य भौतिकवाद की चपेट में पूरी तरह से उलझ चुका है। परमगुरु श्री स्वामी शिवानंद एक युग द्रष्टा थे जिन्होंने अपने शिष्य श्री स्वामी सत्यानंद सरस्वती को संपूर्ण विश्व में योग का प्रचार और प्रसार करने का आदेश दिया, लोक कल्याण के लिए।

20 वर्ष तक (1963 से 1983 तक) श्री स्वामी जी ने वैज्ञानिक परीक्षणों द्वारा योग के आसन, प्राणायाम और ध्यान का ध्वज पूरे विश्व में लहराया। बौद्ध, ईसाई और मुस्लिम देशों ने भी योग का वर्चस्व स्वीकार करते हुए इसे शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य को सुधारने की एक विद्या माना।

आज व्यक्ति व्यस्तता के कारण इस विद्या को भूल बैठा है। प्रत्येक नुक्कड़ पर स्वप्रशिक्षित योग के शिक्षक जनसाधारण को योग को एक चिकित्सा विज्ञान के रूप में सिखा रहे हैं। स्वामी जी ने व्यस्त व्यक्ति के लिए दिन में योग के चार कैप्सूल दिए जो सरलता से 10–15 मिनट का समय निकाल कर किये जा सकते हैं।

1. परमहंस श्री स्वामी जी ने कहा कि सुबह बासी मुँह बिस्तर पर आँख खुलते ही उठकर बैठकर 11 बार महामृत्युंजय मंत्र और 11 बार गायत्री मंत्र करना चाहिए। इन मंत्रों का धर्म से कोई लेना देना नहीं है। महामृत्युंजय मंत्र एक स्वस्थ जीवन का संकल्प मन में डालता है। गायत्री मंत्र को आत्मज्ञान प्राप्त करने के लिए सर्वोत्तम माना गया है। दिन की शुरूआत व्यक्ति को एक शान्त मन से करनी चाहिए।

2. दैनिक क्रिया से निवृत्त होने के पश्चात् ताड़ासन, त्रियक ताड़ासन और कटिचक्रासन 5–7 बार करना चाहिए। उसके पश्चात् सूर्य नमस्कार के कुछ चक्र (राउण्ड) करने चाहिए। स्वामी जी ने कहा कि दिन का अधिकांश समय तुम कुर्सी पर बैठकर ही बिताते हो। तुम्हारी रीढ़ की हड्डी जो शरीर का कॉलम (खंभा) है अधिकतर टेढ़ी ही रहती है। उसी के कारण अनेक अनचाहे रोगों का आगमन शरीर में होता है। इन आसनों में 10–15 मिनट का समय लगता है और शरीर का संपूर्ण अभ्यास हो जाता है। नाड़ी शोधन और भ्रामरी प्राणायाम 5 बार करना चाहिए। नाड़ी शोधन प्राणायाम से मस्तिष्क के दोनों गोलार्द्ध संतुलित हो जाते हैं। आन्तरिक शान्ति और संतुलन कायम होता है। भ्रामरी प्राणायाम करने से मैलाटोनिन नाम के रसायन की उत्पत्ति बढ़ जाती है। यह रसायन रात को 2– 4 बजे के बीच सूई की नोक के बराबर निकलता है और तब तुम गहरी नींद सो पाते हो। अत्यधिक तनाव के कार्य करने वाले कर्मचारियों को दफ्तर में ही 5 – 7 मिनट एकान्त में जाकर यह प्राणायाम करने से बहुत शान्ति का आभास होगा। इस प्राणायाम से यादाशत भी बढ़ती है।

3. शाम को दफ्तर से आकर चाय पिये बिना ही यदि बिस्तर पर लेट कर 10 मिनट योगनिद्रा का अभ्यास कर लिया जाए तो सारे दिन की शारीरिक और मानसिक थकान सहज ही दूर हो जाती है।

4. रात को सोने से पहले 10 मिनट अजपाजप का अभ्यास करना चाहिए। यदि अपना मंत्र है तो उसी को सांस के साथ करना चाहिए अन्यथा सोऽ हम् मंत्र के द्वारा अजपाजप

करना चाहिए।

किसी भी कुशल योग शिक्षक के निर्देशन में व्यक्ति इन अभ्यासों को सीख कर अपनी दिनचर्या में शामिल कर सकता है। आज रोग के चलते हम सब को कुछ दवाई तो खानी ही पड़ती है। क्यों न हम योग के इन चार कैप्सूलों को नियमित रूप से खाएँ। इन कैप्सूलों का कोई भी बुरा साईड इफेक्ट (प्रभाव) नहीं है अपितु ये हमारी आध्यात्मिक प्रगति का मार्ग भी प्रशस्त करते हैं। स्वामी जी ने कहा कि मैं दावे के साथ कह सकता हूँ कि यदि नियमित रूप से व्यक्ति इनको करता है तो सब प्रकार के रोगों से मुक्ति पा सकता है। उच्चरक्तचाप, मधुमेह, एड्स और अन्य कई घातक बीमारियों से व्यक्ति सहज ही मुक्ति पा सकता है। योग के द्वारा व्यक्ति संपूर्ण शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य को सहज ही प्राप्त कर सकता है।

जीवन में समस्याओं और दुर्गति को दूर करने के लिए प्रत्येक शनिवार को दुर्गाजी के 32 नामों का पाठ तीन बार करने से अत्यधिक लाभ होता है।

दैनन्दिनी साधना के चमत्कार

(सत्यकथा)

परमहंस श्री स्वामी सत्यानंद जी ने प्रत्येक व्यक्ति को सुबह आँख खुलते ही सबसे पहले बिस्तर पर ही बैठकर बासी मुँह से 11बार महामृत्युंजय मंत्र और 11 बार गायत्री मंत्र करने का निर्देश दिया। इसको प्रत्येक दिन की सबसे पहली साधना के रूप में करते हुए परमहंस स्वामी निरंजनानंद जी ने कहा कि सुबह ये हमारे दिन की शुरूआत एक सकारात्मक संकल्प के रूप में करती है। अपने स्वास्थ्य के लिए जब व्यक्ति महामृत्युंजय मंत्र सुबह उठते ही करता है तो मन में एक गहरा प्रभाव पड़ता है। गायत्री मंत्र की आवश्यकता आज बड़ों को अधिक है क्योंकि उनकी बुद्धि के दरवाजे बन्द हो चुके हैं। अपने जीवन की दुर्गति का नाश करने के लिए उन्होंने दुर्गा जी के 32 नामों का तीन बार पाठ करने का निर्देश दिया।

इस साधना में लगभग 5–7 मिनट प्रतिदिन लगते हैं। जब इस साधना को मैंने करना शुरू किया तो कुछ ही दिनों में इसके अतिशय लाभ मुझे अपने शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य के रूप में होने लगे। अपने अनुभवों से प्रेरित हो कर मैंने इसे अन्य कई व्यक्तियों को दिया। मेरे बड़े भाई ने इसे नियमित रूप से करने के पश्चात् बताया कि उनके व्यवसाय में उनको बहुत लाभ मिलने लगा। उनकी मानसिक शान्ति और प्रसन्नता भी बहुत अधिक बढ़ गई। आज वह पूर्ण विश्वास के साथ इस सरल साधना को सुबह उठते ही कर रहे हैं। धीरे–धीरे उनका आध्यात्मिक जागरण भी हो रहा है जिससे उन्हें बहुत आनन्द आ

रहा है।

मेरे भाई के लड़के ने मुझे बताया कि 11 बार महामृत्युजंय मंत्र और 11 बार गायत्री मंत्र करने से नित्य उसको कुछ न कुछ उपलब्धियाँ हो रही है। अपनी उपलब्धियों से वह न केवल बहुत अधिक आश्चर्यचकित है अपितु प्रसन्न भी है। धीरे–धीरे अपने अनुभवों से उसका विश्वास गहरा होता जा रहा है।

एक और व्यवसायी ने जब परेशानी से घबरा कर इस साधना को प्रयोग करने का निर्णय लिया तो कुछ ही दिनों में न केवल उसकी परेशानी समाप्त हो गई अपितु उसका मन भी अनिवचनीय आनन्द और प्रसन्नता से भर गया। पाठकों से मेरा निवेदन है कि इस सरल साधना को अपने जीवन का एक अंग बनाएँ और लाभ उठाएँ। इस साधना का धर्म से सम्बन्ध न जोड़ते हुए, मंत्रों की तरंगों के प्रभाव को आत्मसात करते हुए, एक प्रयोग करें। अपने अनुभव से ही मेरे कथन की सत्यता को परखें।

भक्ति का भोजन

(परमहंस श्री स्वामी सत्यानंद सरस्वती के सत्संग से)

श्री स्वामी जी की असीम अनुकम्पा से मुझे और मेरे पति को परम गुरु स्वामी शिवानंद के जन्मोत्सव के उपलक्ष्य में आयोजित श्री मद् भागवत् की पवित्र कथा श्रवण करने का सुअवसर प्राप्त हुआ। श्री गोविन्द गिरी महाराज के द्वारा की गई इस कथा का समस्त भक्तों ने भरपूर रसास्वादन किया। रिखिया पीठ के आस पास के ग्रामीण क्षेत्रों के अनेक ग्रामीण वासियों ने भी इस कथा में पूरे उत्साह से भाग लिया।

छोटे बच्चों से लेकर वृद्धों का उत्साह देखते ही बनता था। रिखिया पीठ, श्री स्वामी जी की एक ऐसी तपस्थली है जिसको तीर्थ कहा जाए तो अतिशयोक्ति न होगी। यह एक ऐसा तीर्थ है जहाँ गरीबों को नारायण मान कर न केवल भरपूर सम्मान दिया जाता है अपितु उनकी अनेक आवश्यकताएँ भी विभिन्न उत्सवों पर प्रसाद के रूप मे पूरी की जाती हैं।

कथा के सातवें दिन महा प्रसाद था। उसी दिन सब भक्तों को श्री स्वामी जी के दर्शनों का सुअवसर भी प्राप्त हुआ। श्री स्वामी जी के आगमन से सब भक्तों की खुशी का पारावार न रहा। कथा वाचक श्री गोविन्द गिरी महाराज जी ने तो श्री स्वामी जी की नारायण की ही भाँति अर्चना करते हुए उनकी आरती भी उतारी। पूरे तीन घंटे श्री स्वामी जी यज्ञशाला में उपस्थित रहे। उनकी कृपा और ऊर्जा का अनुभव प्रत्येक भक्त अपने हृदय में सहज ही करता रहा। श्री स्वामी जी के अमृत वचनों को अपनी लेखनी में बाँधने का एक छोटा सा प्रयास मैंने किया जो इस प्रकार है –

दरिद्रता पाँच प्रकार की होती है। आज कलियुग में व्यक्ति धन की कमी को ही

दरिद्रता मान बैठा है। रिखिया में भी पहले धन की कमी थी। सब लोग देवघर से ही आना जाना करते थे। परन्तु अब रिखिया गरीब नहीं रहेगा। पिछले 10 वर्षों में यहाँ चारों तरफ सम्पन्नता का प्रभाव प्रत्यक्ष दिखाई देता है।

अनेक संत महात्माओं ने भक्ति को एक अनमोल रत्न बताया है। बाकी सब धन नाशवान हैं। भक्ति का धन कभी भी नष्ट नहीं होता । पीले पीले तू हरि नाम का प्याला। इस प्याले को पीकर हो जा तू मतवाला।।

अनादि काल से संतों ने इसे पिया और ये एक ऐसा नशा है जो कभी भी उतरता नहीं है। केवल प्रभु की कृपा से ही भक्ति प्राप्त होती है। जब दुःख आता है तो उसे ईश्वर की दया समझो। जब सुख आता है तो उसे ईश्वर की कृपा समझो। दोनों परिस्थितियों में सदा प्रसन्न रहो। यदि व्यक्ति संपत्ति और विपत्ति दोनों में प्रसन्न रह पाता है तो वह प्रभु की कृपा होती है। मानव का जीवन पूर्णतया ईश्वर के आश्रित होना चाहिए। गरीबी अमीरी तो बाद की बात है, पहले मनुष्य को ऐसी संपत्ति अर्जित करनी चाहिए जो उसे अन्दर से मनुष्य बनाती है। मैनें सोचा कि आज मनुष्य स्वार्थ में इतना अंधा हो गया है कि उसको दूसरे का दुःख भी द्रवित नहीं कर पाता। आज व्यक्ति को भगवान की भक्ति के लिए बड़ी मुश्किल से समय निकालना पड़ता है।

उन्होंने कहा कि आज रिखिया के बच्चों को भक्ति का भरपेट भोजन मिल रहा है। यज्ञशाला में नाचते कूदते बच्चे श्री स्वामी जी के कथन की सहज ही पुष्टि कर रहे थे। उन बच्चों के भाग्य को देखकर सहज ही रश्क हो रहा था। श्री स्वामी जी ने कहा कि भगवान कई तरह से प्रकट होते हैं। उनको प्रगट होने के लिए एक माध्यम की आवश्यकता होती हैं। गुरु एक माध्यम है, भगवान की मूर्ति एक माध्यम है, ऐसा अनेक शास्त्रों में वर्णन है। कन्या भगवान का एक सशक्त माध्यम हो सकती है अगर वो चाहे तो।

बार बार अपने सत्संगों में श्री स्वामी जी ने कन्या के महत्त्व पर बल दिया है। कितने दुर्भाग्य की बात है कि आज शिशु कन्याओं की गर्भ में ही हत्या कर दी जाती है। जिस घर में ज्यादा कन्याएँ होती हैं, वहाँ कन्या को हेय समझते हुए ठीक से खाना–पीना भी नहीं दिया जाता। नवरात्री में कन्या भोज क्या कन्या के महत्व का प्रतीक नहीं है ? परन्तु आज वह साल में केवल दो बार तक ही सीमित रह गया है।

सत्संग श्री श्री रविशंकर जी के संग

19 सितम्बर 2008 को भिलाई के जयन्ती स्टेडियम में पूज्य श्री श्री रविशंकर का महासत्संग बहुत ही भव्य ढंग से आयोजित किया गया। श्री श्री के सत्संग में जाने का सौभाग्य मुझे दूसरी बार प्राप्त हुआ। उनके दिव्य व्यक्तित्व ने पहली ही बार मेरा दिल जीत

लिया था। बच्चों की सी सरलता और भोलापन, सबके लिए प्यार उनके अन्तर से सहज ही उनकी बातचीत में झलक रहा था। श्री श्री ने जयन्ती स्टेडियम में बैठे लाखों लोगों को न केवल ध्यान करवाया अपितु यह भी सिद्ध कर दिया कि यदि व्यक्ति में शक्ति है तो लाखों की भीड़ भी मौन हो सकती है। स्टेडियम में छाई हुई निस्तब्धता इस बात की साक्षी थी। साइक्लोन के कारण दो दिन से लगातार मूसलाधार वर्षा हो रही थी। जब मैंने एक आयोजक से कहा कि "क्या टैन्ट लगे हैं ?" तो उन्होंने कहा कि "प्रकृति का ही भरोसा है। अधिक पानी के कारण जमीन में डण्डा गाड़ना भी कठिन है।" तब मैंने उनको कहा कि "श्री श्री कुछ तो चमत्कार करेंगे ही।" उन्होंने कहा कि, "वो जादूगर नहीं हैं। मैंने मन में सोचा कि चलो देखते हैं। और उस रोज सुबह से ही धूप निकल आई। रात को आसमान एकदम साफ था, कहीं कहीं तारे भी दिखाई दे रहे थे। प्रोग्राम के आखिर तक बादलों से झाँकता आधा चाँद भी मानो श्री श्री के दर्शनों की अभिलाषा से वहाँ दिखाई दे रहा था। मैंने सोचा कि एक चाँद आसमान में है और एक चाँद जमीं पर हमारे सामने है। जमीं वाला चाँद तो हम सबके कल्याण के लिए समर्पित है। उनकी दिव्य विभूति को मन में सँजोए, मैं उनके सत्संग के कुछ अंश उन भक्तों के लिए लिख रहीं हूँ जो वहाँ जाने से वंचित रह गए।

हो रही थी वर्षा वहाँ अमृत की, ऊर्जा की।
जिसके भाग्य में था उसने पी लिया, छक लिया।
छोड़ दिया प्यासा श्री श्री ने अपने अनेक चाहने वालों को।
क्योंकि समय की बेहद कमी थी उनके पास।।
आखिर कई चाहने वाले उनका आशीर्वाद, छू कर पाना चाहते थे।
पर श्री श्री ने दूर बैठे भक्तों को भी पूर्णतया तृप्त किया जिनकी ग्रहण शक्ति थी।
था जिनका दृष्टिकोण पूर्णतया सकारात्मक ।
वही उनकी कृपा को पूर्णतया समझ पाए।।

श्री श्री ने गृहस्थों को ध्यान और सेवा का मुख्य संदेश दिया। उन्होंने ध्यान के अभ्यास द्वारा समस्त पीड़ा का सहज ही निवारण करवाते हुए यह प्रमाणित कर दिया कि ध्यान के नियमित अभ्यास द्वारा रोग मुक्त जीवन सहज ही जिया जा सकता है। आज बाजार में ध्यान की अनेक सी.डी. और कैसेट उपलब्ध हैं। सद्गुरु की अनुपस्थिति में व्यक्ति सहज ही इन विकल्पों का लाभ उठा सकता है। मैंने सोचा कि शुरु में थोड़ा सा विश्वास सन्तों की वाणी पर रख कर यदि व्यक्ति धैर्य के साथ नियमित अभ्यास करता है तो अपनी उपलब्धियाँ उसे स्वयं ही आश्चर्यचकित कर देती हैं।

"आज के परिपेक्ष में अपनी कार्यक्षमता अनुसार प्रत्येक व्यक्ति को गरीबों की

सेवा करनी चाहिए। एक वकील साल में तीन केस गरीबों के मुफ्त करे। एक शिक्षक तीन गरीब बच्चों को मुफ्त पढ़ाए। एक डॉक्टर तीन कैम्प पिछड़े ग्रामीण क्षेत्रों में मुफ्त लगाए। उन्होंने कहा कि सेवा छोटी या बड़ी नहीं होती। कई लोग सोचते हैं कि हमारे पास जब बहुत सारा पैसा होगा, तभी सेवा शुरु करेंगे। छोटी से छोटी भाव के साथ की गई सेवा का भी करोड़ो रूपये खर्चने के बराबर ही प्रतिफल मिलता है। अतः आप जहाँ हो वहीं सेवा करो।"

आज प्रत्येक सन्त सेवा को ही मुख्यतः प्रधानता दे रहे हैं। **"सेवा जीवन में नमक के समान है।" परम गुरु स्वामी शिवानन्द।** कुछ रोज पहले जब मैं परमहंस श्री स्वामी सत्यांनद सरस्वती जी की तपस्थली रिखिया पीठ गई तो वहाँ परमहंस स्वामी निरंजनानंद सरस्वती ने भी मुझे सेवा करते जाने को कहा। मुझे लगा कि संत तो सब एक ही उपदेश दे रहे हैं, हमारे कल्याण के लिए। कमी है केवल हमारे समझने की।

"प्रतिदिन एक मुट्ठी आटा या चावल एक डिब्बे में डालते जाओ। मास के अन्त में उसको पका कर गरीबों की बस्ती में जा कर बाँटो।" प्रत्येक गृहिणी अगर इसे करेगी तो हमारे देश में कोई भी भूखे पेट नहीं सोएगा। कितनी सरलता से उन्होंने दान का महत्वपूर्ण सूत्र सबको दे दिया। इतने बड़े संत और इतनी सरल शिक्षाएँ!

जब एक व्यक्ति ने उनको कुछ गुब्बारों में "सुखी भव" का पोस्टर बाँध कर उड़ाने के लिए दिया तो उन्होंने तुरन्त उसका खंडन करते हुए पर्यावरण को सुरक्षित रखने का संदेश दिया। उन्होंने कहा, "कागज और प्लास्टिक का प्रयोग कम से कम करो। हमारे आने का प्रचार करना ठीक है,परन्तु कम से कम कागज और पोस्टर प्रयोग करो।"

छत्तीसगढ़ के युवा नक्सलवादियों के प्रति उन्होंने असीम वात्सल्य का प्रदर्शन करते हुए सहानुभूति जताई। उन्होंने कहा कि "बातचीत से मामला सुलझ सकता है। हम जानते हैं कि तुम जंगल में तपस्या कर रहे हो। अनेक कठिनाईयाँ झेल रहे हो।" अपराधियों में भी ईश्वर के दर्शन कर सकना और उन्हें समाज में खुले आम वापिस आने के लिए कहने का साहस एक महान संत ही कर सकता है। उन्हें शान्ति दूत कहा जाए तो अतिशयोक्ति न होगी।

उन्होंने कहा कि "ईश्वर पर विश्वास रखो। अपनी सारी चिन्ताएँ हमें दे दो। हम तुम्हारे विश्वास को पक्का करने के लिए ही आए हैं। प्रत्येक व्यक्ति योग के शिक्षक बनने के लिए नाम दे सकता है। हम शिविर लगाएँगे और प्रशिक्षण देंगे। आज रोग इतने अधिक स्तर पर जनसाधारण को परेशान कर रहे हैं, अतः उन्होंने सात्विक भोजन जिसमें मिर्च मसाले कम से कम हों, उनका प्रयोग करने का अनुरोध किया। अनेक रसायन और कीटनाशक मुक्त शाक सब्जी खाने से रोग स्वतः ही दूर रहेगा। दिवाली पर मेवों के स्थान में ज्ञान की पुस्तकें जैसे श्रीमद्भगवद्गीता आदि बाँटो।" ज्ञानयज्ञ को गीता में भगवान श्री कृष्ण ने सर्वश्रेष्ठ

यज्ञ बताया है।

प्र.1 – भगवान अगर सामने खड़े हों तो उनसे क्या माँगें?

उ.– भगवान से उनका निरन्तर स्मरण माँगो। बुद्धि में मंगल कामनाएँ ही आएँ ऐसा माँगना चाहिए।

प्र.2– गुरुओं का गुरु कौन है?

उ. – विवेक और ज्ञान गुरुओं का गुरु है। इसीलिए उसे सदाशिव कहा गया है।

प्र.3 – किस्मत किसे कहते हैं?

उ.– आप बड़े किस्मत वाले हो जो सत्संग कर रहे हो। किस्मत वाले ही ऐसे आयोजन में भाग ले सकते हैं।

प्र.4 – कलियुग कब समाप्त होगा?

उ.– बस अब इन्तजार समाप्त हुआ ही समझो।

सत्संग के अन्त में श्री श्री ने कीर्तन का आदेश दिया। जब वो पण्डाल में पधारे थे, तब भी उन्होंने ध्यान में बैठ कर तीन कीर्तन सुने। अपने व्यवहार के द्वारा उन्होने कीर्तन को मन शान्त और प्रफुल्लित करने का गूढ़ सन्देश सहज ही दे दिया। कीर्तन में मन सहज ही रम जाता है। और व्यक्ति आनन्द विभोर हो उठता है। लोगों को अपने अधिकार के प्रति जागरूक करते हुए वोट देकर अपना सही नेता चुनने का अनुरोध करते हुए उन्होंने जता दिया कि आज की भ्रष्ट राजनीति के लिए हम सब भी जिम्मेदार हैं एक हद तक।

धन्य हैं ऐसे गुरु जो उन्नति के शिखर पर पहुँच कर भी जन–जन के हृदय को अपने स्नेह और वात्सल्य से भर रहे हैं। अपनी करुणा से हम सब की करुणा भी जगा रहे हैं, सजग बना रहे हैं। छोटे–छोटे सरल सूत्रों के द्वारा हमें अपना जीवन उन्नत बनाने का मार्ग प्रशस्त कर रहे हैं। क्या ऐसे गुरु इस धरा पर ईश्वर का प्रतिनिधित्व नहीं कर रहे हैं?

श्री श्री रविशंकर जी द्वारा कराए गए ध्यान का एक विवेचन –

19 सितम्बर 2008 को श्री श्री ने स्टेडियम में उपस्थित भक्तों को 18 मिनट का सामूहिक ध्यान करवाया। कितना सुखद आश्चर्य है कि लाखों की भीड़ पूर्णतया मौन थी! उन्होंने तीन सूत्र ध्यान में दिए –

1. **<u>अकिंचन</u>** – अकिंचन का अर्थ है मैं कुछ भी नहीं हूँ। अर्थात् न मैं ऑफिसर हूँ, न मैं नौकर हूँ, न मैं स्त्री हूँ, न मैं पुरुष हूँ। कुछ क्षण के लिए भी यदि हम स्वयं को इस शरीर से अलग कर सके तो अपने अन्दर के परमात्म तत्त्व का सहज ही अनुभव कर सकते हैं। अभिमान के रहते हुए प्रभु का अनुभव तो असम्भव ही है। अतः उन्होंने सर्वप्रथम इस अभिमान को हटाने का महत्वपूर्ण सूत्र दिया।

2. **अप्रयत्न** – अप्रयत्न का अर्थ है कोई कोशिश न करना। हम सब उस ईश्वर के अंश है। यदि हम अपने अन्दर के विकारों जैसे क्रोध, चिन्ता, तनाव और ईष्या आदि से स्वयं को खाली कर पाते हैं तो सहज ही उस दिव्यता का अनुभव कर पाते हैं जो हम सब का पैतृक अधिकार है। आज अधिकांश व्यक्ति ध्यान को गलत तरीके से करते हुए उसका लाभ नहीं उठा पाते हैं। मन को जोर जबरदस्ती से काबू में लाना असंभव है। नियमित अभ्यास के द्वारा ही चित्त की वृत्तियों का निरोध होता है और एक आदत का निर्माण होता है।
3. **अचाह** – इस समय मुझे कुछ नहीं चाहिए। ध्यान में बैठने के समय यदि व्यक्ति कुछ मिनटों के लिए भी अपनी इच्छाओं का निराकरण कर पाता है तो उसे आश्चर्य जनक उपलब्धि संभव है । जो मन सारा समय ध्यान में ही अपनी इच्छाओं को पूरी करने के संकल्प विकल्प बनाता रहता है, भला वह एक बिन्दु पर कैसे स्थिर रह पाएगा ? अतः ईश्वर पर विश्वास बढ़ाने का; वह हमारी सब जरूरते स्वयं ही पूरी करेगा, यह एक गूढ़ सूत्र है। अभ्यास की नियमितता ही हमें इसका लाभ दिला सकती है।

ॐ और हर हर.... का उच्चारण करवाते हुए उन्होंने ध्वनि की तरंगों के महत्व का संदेश दिया। उन्होंने बार बार देह को शिथिल करने के लिए कहा। देह को शिथिल करने से देह का भान तो स्वतः ही समाप्त हो जाता है। यह देह तो नश्वर है परन्तु आत्मा अमर है। अतः देह का ध्यान जितना कम से कम किया जाए उतना ही अच्छा होगा; क्योंकि तभी हम अपने अन्दर के ईश्वरत्व को जान सकेंगे, पहचान सकेंगे। छत्तीसगढ़ की शांति, भारत की शांति और संपूर्ण विश्व की शांति के लिए उन्होंने सब उपस्थित लोगों से तीन बार हाथ उठा कर ॐ का पवित्र नाद करवाया। ध्वनि की शक्ति आज विज्ञान भी मान रहा है। ऐसे सद्गुरु के चरणों में मेरा शत्–शत् प्रणाम जो अपना जीवन जन कल्याण के लिए ही समर्पित किए हैं।

पूज्य श्री श्री रविशंकर जी के श्री चरणों में मेरा एक भाव

है भारत एक दिव्य भूमि, जिसके कण–कण में ईश्वरत्व है।
जन्मे हैं अनेक अवतार यहाँ कृष्ण और राम के रूप में।
आज भी पूर्ण निःस्वार्थ सद्गुरु हैं यहाँ जन्मे, पले बढ़े और बढ़ रहे।
ऐसे सद्गुरु जो अपने चरित्र की गरिमा से विश्व में भारत का झंडा ऊँचा लहरा रहे।
भारत एक आध्यात्मिक देश है। ऐसे गुरु जन–जन तक विश्व में ये संदेश फैला रहे।
है पावन गंगा, यमुना और सरस्वती यहाँ, है महक इस मिट्टी में आध्यात्मिकता की।
है प्रणेता भारत विश्व शांति का। विभिन्न सद्गुरु अपने व्यवहार से विश्व के कोने–कोने में ये संदेश पहुँचा रहे।
गर पश्चिम को है गर्व तकनीकी प्रगति का।

तो पूर्व को भी है गर्व अपनी आध्यात्मिकता का।
ऐसे सद्गुरु सहज ही अपने आलोक से संपूर्ण विश्व का कोना–कोना चमका रहे।
हे भारतवासियों ! उठो ! जागो ! अपने देश की गरिमा पहचानो।
पश्चिम के पीछे अंधाधुंध मत भागो।
अपनी संस्कृति से जुड़ो और उसकी गरिमा पहचानो।
नारी को देवी की तरह पूजा जाता है, उसका सम्मान करो।
गरीबों, वृद्धों में भगवान बसता है उनकी सेवा करो।
विश्व के हर मानव से प्यार करो। जो कुछ भी तुम्हारे पास है उसे दूसरों में बाँटो।
यही है रहस्य अखण्ड शान्ति और प्रसन्नता प्राप्त करने का।
अपने हृदय को उदार बनाओ। लोभ की समस्त दीवारों को गिराओ ।
जब हम निःस्वार्थ हो जाएँगे तो प्रभु स्वयं ही हमारे पास चले आएँगे।
महकेगा हर आँगन, हर कोना, हर दिल उस दिव्य सुगंध से।
जो हमारे पास है परन्तु अनजाने ही दूर चली गई है।
हम असमर्थ हैं उसको अनुभव करने में, क्योंकि हमने अपने अहंकार की मजबूत दीवार खड़ी की है।
देह का अभिमान जिस रोज छूट जाएगा, सब तनाव, चिन्ता, क्रोध स्वयं ही दूर हो जाएगा।
जितना अकड़ते हो उतना ही जकड़ते हो।
अतः गर शिथिल स्वयं को छोड़ोगे तो अपने अन्दर के ईश्वर से जुड़ोगे।
छूट जाएगा सब साजो सामान यहीं पर जब काल का दण्ड लगेगा।
क्यों भागते हो नश्वर चीजों के पीछे, उसका मज़ा तो कोई दूसरा ही लूटेगा।

यम और नियम क्यों ?

(श्री स्वामी सत्यानंद की शिक्षाओं से)

आज कलियुग में सर्वत्र अशांति, दुःख, भय और चिन्ता का साम्राज्य है। जन जन स्वार्थ के कारण अत्यधिक पीड़ा का कोप भाजन बना हुआ है। केवल स्वयं और अपने छोटे से परिवार पर अपनी चेतना केन्द्रित करते हुए व्यक्ति सुखी होने की अपेक्षा रोग को अनचाहे, अनजाने ही निमंत्रण दे बैठा है। धन का बाहुल्य, विज्ञान की प्रगति ने इस समस्या को और भी बढ़ा दिया है। सुख की खोज में, रोग के निदान में व्यक्ति दर–दर भटक रहा है। संयम उसे अत्यधिक दुष्कर लगता है।

योग, ऐसे समय में एक सशक्त विकल्प के रूप में सामने आया है। योग भारतीय संस्कृति का एक अभिन्न अंग रहा है। अनेक वर्षों तक ऋषि मुनियों ने इस अमूल्य धरोहर

को संभाल कर रखा और लुप्त होने से बचाया। अनेक व्यक्ति न केवल भारत में अपितु सम्पूर्ण विश्व में योग की शरण ले रहे हैं। महर्षि पतंजलि के अष्टांग योग में यम और नियम का प्रथम और द्वितीय स्थान है। परन्तु आज साधारणतया इन दो चरणों का अतिक्रमण करते हुए, आसन और प्राणायाम को ही योग समझा जा रहा है। प्रचारित किया जा रहा है। और आसन, प्राणायाम को भी केवल तभी तक किया जाता है, जब तक थोड़ा आराम न आ जाए। जैसे ही रोग का अतिरेक कम होने लगता है, लोग आसन, प्राणायाम भी बन्द कर देते हैं। ऐसे में भला स्थायी लाभ की आशा किस प्रकार की जा सकती है?

जीवन में स्थायी सुख और शांति लाने के लिए, आनन्द और प्रसन्नता प्राप्त करने के लिए, यम और नियम को जीवन में धीरे धीरे अपनाना अनिवार्य है। महर्षि पतंजलि ने प्रथम यम सत्य को बताया है। और कलियुग में झूठ बोलना समझदारी समझी जाती है। व्यावहारिकता का आवरण पहना कर अनेक लोग स्वयं को झूठ बोलने के अपराध बोध से भी मुक्त कर लेते हैं। परन्तु हमारे अन्तर में जो आत्मा, ईश्वर का अंश है, वह झूठ बोलने से निर्बल होती जाती है।

दूसरा यम महर्षि ने अहिंसा लिखा है। अहिंसा का अर्थ है मन, कर्म और वाणी में पूर्ण हिंसा का अभाव। यदि हम मन से किसी का बुरा सोचते है तो वह भी एक प्रकार की हिंसा हैं। किसी की बुराई या चुगली करना भी एक प्रकार की हिंसा है और अहंकार का द्योतक है। प्रत्यक्ष रूप में इस प्रकार की गई हिंसा का प्रभाव दिखाई नहीं देता; परन्तु सूक्ष्म में इसका बहुत दुष्प्रभाव होता है।

तीसरा यम अस्तेय है। अस्तेय का अर्थ है चोरी न करना। अर्थात् इसका अर्थ केवल चीज चुराने से नहीं है, अपितु किसी भी काम को छिपा कर करने से भी है। जब व्यक्ति कोई गलत, अनैतिक कार्य एकान्त में करता है तो ऐसा सोचता है कि उसको कोई नहीं देख रहा। परन्तु उसकी अन्तरात्मा क्षतविक्षत होती है। वह चाहे अपनी आत्मा की उस आवाज को अनसुना कर दे, पर अन्दर में एक गहन अपराध बोध की भावना रहती अवश्य है।

चौथा यम अपरिग्रह है। अपरिग्रह का अर्थ है अनावश्यक संग्रह से मुक्ति। अधिकतर धनी लोग हर चीज को न केवल बहुतायत में खरीदतें है; अपितु उनको अलमारियों में भरकर वर्षों तक रखते भी हैं। चाहे उन कपड़ो को कीड़ा काट जाए परन्तु किसी गरीब, जरूरतमंद को देने का सत्कर्म चाहते हुए भी नहीं कर पाते हैं। और परिणाम ! अनावश्यक संभाल, देखरेख, तनाव, शारीरिक और मानसिक ऊर्जा का क्षय। और कंजूस व्यक्ति की नई चीजें इस प्रकार रखे रखे ही खराब हो जाती हैं।

पाँचवा यम है ब्रह्मचर्य। ब्रह्मचर्य का अर्थ साधारणतया केवल विवाहित व्यक्तियों को संयम की शिक्षा देने से लगाया जाता है। परन्तु अनेक शास्त्रों में वीर्य को अत्यन्त शक्तिशाली

ऊर्जा का स्त्रोत बताया गया है। और उसका अनावश्यक क्षय शारीरिक, मानसिक कमजोरी का कारण बनता है। विद्यार्थी जीवन में शिक्षा पर अपनी सम्पूर्ण ऊर्जा केन्द्रित करने की आवश्यकता होती है। आज अश्लील चलचित्रों के कारण कई नवयुवक और नवयुवतियाँ पथभ्रष्ट हो रहे हैं। अनेक अंतःस्त्रावी ग्रन्थियों के असमय स्त्राव होने से किशोरावस्था में बहुत सी भावनात्मक समस्याओं का सामना, माता पिता और बच्चों को करना पड़ रहा है। तनाव, तनाव और केवल तनाव आज मानव जीवन की परिणति बन गया है।

इसी प्रकार जो नियम महर्षि पतंजलि ने शुचिता, तप , स्वाध्याय, संतोष इत्यादि दिए हैं उनका गूढ़ अर्थ भी व्यक्ति की आन्तरिक प्रज्ञा को जागृत करते हुए मन को शांति की ओर अग्रसर करना ही है। उदाहरणतया – संतोष का गुण एक ऐसा गुण है जो व्यक्ति को 'जेहि विधि राखे राम तेहि विधि रहिये' की भावना से जोड़ता है। और जब हम अपने जीवन की डोरी प्रभु के हाथ में दे देते हैं; उसकी इच्छा में सन्तोष करते हैं। तब आनन्द और प्रसन्नता की दिव्य सम्पत्ति के सहज अधिकारी बन जाते हैं। धीरे–धीरे शारीरिक और मानसिक तप करते हुए हमारी इच्छाशक्ति दृढ़ होने लगती है। निम्न वृत्तियों का हम सरलता से दमन करत पाते हैं। और तब प्रारम्भ होती है हमारी आंतरिक शुद्धि की यात्रा । स्वाध्याय के द्वारा हम स्वयं के दुर्गणों को जानते हुए, पहचानते हुए, स्वीकारते हुए, अनन्त के उस मार्ग पर अपना पहला चरण रखते हैं, जिसकी परिणति आत्मसाक्षात्कार है। उठो ! जागो ! योग को केवल स्वास्थ्य लाभ तक सीमित मत रखो। यम और नियमों को अपने जीवन का अंग बनाओ। अपना जीवन योगमय बनाओ। प्रत्येक क्षण उस सुख, आनन्द और आन्तरिक प्रसन्नता का अनुभव करो जिस पर तुम्हारा पैतृक अधिकार है। तो आओ हम अपने कर्मों की लेखनी से अपना भाग्य लिखें। दुःख की कालिमा को हटा कर, अज्ञान के अंधकार को दूर करके एक नए सवेरे का दर्शन करें।

यम और नियम की सार्थकता

(श्री स्वामी चिदानंद की शिक्षाओं से)

योग कहता है कि प्रत्येक मानव ईश्वर का ही प्रतिरूप है। अतः प्रत्येक के अन्दर ईश्वर के समस्त गुण निहित हैं। दुःख, चिन्ता, तनाव, भूख, प्यास, थकान और रोग व्यक्ति स्वयं अपने ऊपर लादे हुए हैं। प्रत्येक व्यक्ति अनन्त सुख और शान्ति का सहज ही न केवल अधिकारी है अपितु एक अद्वितीय शक्ति और ऊर्जा का स्त्रोत भी है। ईश्वर को प्रकाश अथवा ज्योति स्वरूप कहा जाता है।

परन्तु साधारण मानव के जीवन में सतत तनाव, चिन्ता और परेशाानियाँ है। आज कलियुग में धनी और निर्धन दोनों ही रोगों से जूझते हुए दुःख का नित प्रतिदिन सामना कर

रहें हैं। सुख और शान्ति तो मानो एक मृग मरीचिका सी ही बन कर रह गये हैं। सुख और शान्ति के अभाव में शाश्वत प्रसन्नता तो मानो कपोल कल्पित कल्पना ही प्रतीत होती है। क्षणिक सुख को ही मानव दिन रात विषय भोगों मे ढूँढते–ढूँढते बेहाल हो चुका है। अपने चारों ओर उसने एक मकड़ी का जाला सा बुन लिया है। अपनी अनन्त वासनाओं और इच्छाओं के दलदल में वह दिन प्रतिदिन गहरे और गहरे धँसता ही जा रहा है। किसी सहारे की आशा में अनेकों बार वह धर्म के झूठे ठेकेदारों के चंगुल में भी फँस जाता है। परिणाम! विश्वास और श्रद्धा का ह्रास।

महर्षि पतंजलि ने योग में यम और नियम को अत्यधिक महत्वपूर्ण बताया है। आज व्यक्ति योग को केवल आसन और प्राणायाम ही मान बैठा है। आसन और प्राणायाम से रोगों से तो उसको कुछ हद तक आराम मिलता है परन्तु आन्तरिक परिवर्तन के अभाव में वह अपना जीवन नियमित नहीं कर पाता और पुनः अनुशासन के अभाव में रोगी हो जाता है। दुःख, तनाव और चिन्ता उसे मानसिक सुख और चैन लेने नहीं देते। उसका पूरा जीवन एक संघर्ष ही बन कर बीत जाता है।

परमगुरु स्वामी शिवानंद ने लिखा है कि "यदि 5 यमों में से एक भी यम लगन और सच्चाई से व्यक्ति अपनाता है तो बाकी सब सद्‌गुण उसके अन्दर स्वतः ही आ जाते हैं। जब व्यक्ति क्रोध करता है तो वह एक प्रकार की पशुवृत्ति का ही तो प्रदर्शन करता है। वह भी एक प्रकार की हिंसा ही है। इसी प्रकार जब व्यक्ति झूठ बोलता है अथवा कुछ छिपाता है तो अपने सहज ईश्वरीय गुण सत्य से स्वतः ही दूर होकर पशुत्व की ओर खिसक जाता है। जो कुछ भी अपनी मेहनत से मिला है, मनुष्य को वही प्रयोग करना चाहिए। अस्तेय अर्थात् चोरी न करना तीसरा यम है जिसका पालन करने से मनुष्य स्वयं मानसिक शांति का अनुभव कर पाता है। चौथा यम है ब्रह्मचर्य आज के युग में बढ़ता हुआ व्यभिचार और परिवारों का टूटना इस बात का द्योतक है कि संयम का सर्वत्र अभाव है। विवाह एक पवित्र बन्धन है। अपने परिवार में रहते हुए गृहस्थ यदि संयम से रहता है तो अनेक शारीरिक और मानसिक परेशानियों से सहज ही बच पाता है। आज एड्स जैसे घातक रोग का मुकाबला करने के लिए डॉक्टर भी संयम का ही सुझाव देते हैं। पाँचवा यम है अपरिग्रह। अपरिग्रह का अर्थ है आवश्यकता से अधिक वस्तुओं का जरूरतमंदो में वितरण । यदि अपने पास फालतू कपड़ों और अन्य उपभोग की सामग्री को व्यक्ति बाँटता है तो सहज ही दान का पुण्य भी उसकी झोली में आ जाता है। यमों का पालन करने से मानव सहज ही अपनी पशुवृत्ति का दमन करते हुए क्रोध, चिन्ता और तनाव को एक हद तक समाप्त कर सकता है।

स्वयं को उस ईश्वरत्व का अनुभव करवाने के लिए नियमों का पालन आवश्यक है ।

पहला नियम है शौच अर्थात् सफाई, बाहरी और आन्तरिक दोनों। शरीर की सफाई व्यक्ति को रोगों से दूर रखते हुए सहज ही चुस्ती फुर्ति और स्फूर्ति प्रदान करती है। बुरे और दूषित विचारों का निष्कासन करने से व्यक्ति स्वयं ही एक नेक राह पर चल पड़ता है। दूसरा नियम है संतोष। संतोष एक ऐसा धन है जिसके आ जाने से व्यक्ति हर परिस्थिति में खुश रह सकता है। अनन्त इच्छाओं पर भी लगाम केवल और केवल संतोष से ही लगाई जा सकती है। इच्छा व्यक्ति को कभी भी सुखी होने नहीं देती। तीसरा नियम है तप। तप का अर्थ केवल जंगल में जाने से नहीं है। घर में रहते हुए अपनी इन्द्रियों पर संयम करना ही तप है। आज विज्ञान की प्रगति ने टी.वी., फोन आदि अनेक उपहार मानव को दिए हैं। विज्ञापनों को देख कर व्यक्ति सहज ही इच्छाओं के जाल में फँस जाता है। जीभ को अधिक मीठा खाने से रोकना भी एक प्रकार का तप ही है। थोड़ी सी गर्मी और सर्दी को अपनी शक्ति के अनुसार सहन करना भी एक प्रकार का तप है। गर्मी के दिन में कुछ समय पंखे के बिना बैठने का यदि अभ्यास किया जाए तो इच्छाशक्ति में आश्चर्यजनक वृद्धि की जा सकती है। सप्ताह में एक दिन खास कर यदि रविवार को नमक छोड़ दिया जाए तो आँख की ज्योति में लाभ के साथ साथ इच्छा शक्ति में भी वृद्धि सहज ही हो सकती है। उपवास में आज अधिकांश लोग तरह तरह के गरिष्ठ तले हुए खाद्य पदार्थ खाते हैं। उपवास का प्रावधान संयम और शरीर के स्वास्थ्य को सुदृढ़ करने के लिए किया गया । अपनी शक्ति के अनुरूप सादा भोजन दिन में एकबार लेने से अत्यधिक लाभ होता है। भारतीय संस्कृति में विभिन्न त्यौहारों पर उपवास एक प्रकार का तप ही तो है गृहस्थों के लिए । **परमगुरु स्वामी शिवानंद ने एकादशी को निर्जल व्रत रखने का अत्यधिक महत्व बताया है। व्रत में फल और दूध भी लिए जा सकते हैं यदि शारीरिक शक्ति की कमी हो तो। इस एक दिन व्रत के साथ भगवान के नाम का स्मरण और कीर्तन अत्यधिक लाभदायक है।**

स्वाध्याय चौथा नियम है जिसका अर्थ है अध्ययन। सद्‌ग्रंथों जैसे वेद, गीता, भागवत, और रामायण आदि का नियमित रूप से अध्ययन करने से व्यक्ति का मन सहज ही अच्छे विचारों का क्षेत्र बन जाता है। सत्संग और श्रवण भी एक सशक्त माध्यम है मन में अच्छे विचार रोपित करने का। सत्संग और श्रवण आज के युग में सी.डी. और कैसेट के द्वारा नियमित रूप से किया जा सकता है। महापुरुषों का सान्निध्य अवश्य ही कहीं अधिक बेहतर है परन्तु उसके अभाव में पुस्तकों, सी.डी., और कैसेट आदि का प्रयोग अवश्य करना चाहिए। घिसते–घिसते तो पत्थर पर भी निशान पड़ जाता है फिर इन्सान तो अत्यधिक ग्राह्यशील और संवेदनशील प्राणी है।

ईश्वर प्रणिधान पाँचवा नियम है। ईश्वर प्रणिधान का अर्थ है ईश्वर के विधान पर पूर्ण विश्वास करना। हम सब यह जानते तो हैं पर कर कहाँ पाते हैं? जब सुख संपत्ति आती

है तो स्वयं को कर्त्ता मान कर उसमें ही अभिमान करते रहते हैं। और जब दुःख आता है तो या तो किसी और को दोषी ठहराते हैं अथवा ईश्वर को ही भला बुरा कहते हैं। महर्षि पंतजलि के इस नियम का सारांश मुझे तो अपने अनुभवों से यही समझ आया कि चाह कर भी हम ईश्वर के विधान को पलट नही सकते हैं। और जब हमें हर परिस्थिति का सामना करना ही है तो क्यों न इसे सम रहते हुए करें ? सुख और दुःख दोनों को ईश्वर का उपहार समझ कर यदि अपना मानसिक संतुलन कायम रखने का प्रयत्न किया जाता है तो हम अंहकार और विषाद दोनों से ही सहज में बच पाते हैं। **"हे ईश्वर तेरी इच्छा पूर्ण हो"** यदि इस वाक्य को हम बार बार दोहराते हैं तो न केवल अपना जीवन सुख पूर्वक बिता सकते हैं अपितु धीरे–धीरे अपने अन्दर के ईश्वरत्व से भी जुड़ पाते हैं। माता पिता यदि अनुकरणीय व्यक्तित्व के स्वामी हैं तो उनकी आज्ञा का पालन करते हुए, गुरु आज्ञा को शिरोधार्य यदि व्यक्ति करता है तो अपने अन्दर के प्रकाश का दर्शन कर पाता है। ईश्वर के ऊपर विश्वास की नीव धीरे–धीरे दृढ़ होने से श्रद्धा का विकास संभव होता है। संतोष का दिव्य गुण तो सहज ही व्यक्ति का स्वभाव बन जाता है।

यम और नियमों का पालन करते करते जब एक उच्च मन का निर्माण होता है तो व्यक्ति ईश्वरीय ऊर्जा और कृपा का अनुभव अपने रोम–रोम में करने लगता है। संतों की वाणी उसे भाने लगती है। स्वाध्याय, कीर्तन, प्रभु नाम सिमरन में उसे रस आने लगता है। अपने अन्दर के आनन्द से जिस रोज व्यक्ति का परिचय होता है, विषय भोगों के क्षणिक सुख उसे फीके लगने लगते हैं। आखिर यह प्रश्न भी विचारणीय है कि संत कैसे गरीबी को न केवल अपने ऊपर थोपते हैं अपितु उसमें आनन्द भी लेते हैं। जिस रोज हम अपने अन्दर के रस के स्त्रोत से जुड़ जाएँगे, बाहर के सब विषय भोग स्वयं ही छूट जाएँगे। पाएँगें वह दिव्य आनन्द जो ईश्वर प्रदत्त है।

पाएँगे वह सुख और प्रसन्नता, जो शाश्वत और निरन्तर है।
न रहेगें हम गुलाम हम अपनी इन्द्रियों के। न भागेंगे जीभ के स्वाद की ओर।
न भागेंगे कृत्रिम सुगंध की ओर। न पहनेंगे चमकीले, भड़कीले वस्त्र स्वयं को प्रभावशाली दिखाने के लिए,
सात्विक भोजन ही हमें तृप्त करेगा। सादे वस्त्र और वेश भूषा ही हमें प्रसन्न रखेगी।
ईश्वर रचित फूलों की संगुध ही हमें भाएगी।
प्रत्येक जड़ चेतन में ईश्वर की रचना ही नजर आएगी।
करेगें ईश कृपा का अनुभव पल पल। प्रत्येक मानव को अपना बन्धु ही मानेंगे।
करेंगे सर्वत्र शान्ति और प्रसन्नता का प्रचार, सेवा को ही अपने जीवन का ध्येय बनाएँगे।

मितव्ययिता – एक यम ?

'मितव्ययिता एक ऐसा गुण है जो जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में सफलता दिलाने में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। मितव्ययिता को कंजूसी के साथ कदापि न जोड़ा जाए। मितव्ययिता का अर्थ है अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति करते हुए अनावश्यक खर्चों पर रोक लगाई जाए। अर्थात् स्वयं की जो अनावश्यक इच्छाएँ हों, जिनसे देह का अभिमान बढ़ता हो अथवा समाज में दिखावे को बढ़ावा मिलता है उनको धीरे धीरे नियंत्रित किया जाय। मेहनत से कमाए हुए धन को यदि समझदारी से खर्च करते हुए व्यक्ति बचाए हुए धन का सदुपयोग गरीबों, वृद्धों और रोगियों को दे कर पाता है तो स्वतः ही वह ईश्वर कृपा का अधिकारी बन जाता है।

योग कहता है कि प्रत्येक व्यक्ति ईश्वर स्वरूप है। यदि उसे अपने ईश्वर स्वरूप का अनुभव करना है तो वह यम और नियमों का पालन करते हुए, आसन और प्राणायाम करता है तो सहज ही ऐसा संभव है। सत्य, अहिंसा, अस्तेय (चोरी न करना) ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह पाँच यम हैं। अधिक खर्च करने को भी अस्तेय कहा गया है। **स्वामी चिदानंद ने कहा है कि " अधिक खर्च करने से आप किसी व्यक्ति को उसके अधिकार से वंचित करते हो। अतः यह भी एक प्रकार की चोरी है।"** साधारणतया किसी दूसरे की वस्तु को बिना उसकी आज्ञा के लेना ही चोरी कहा जाता है। परन्तु इस यम का इतना गूढ़ अर्थ होगा यह पढ़कर मैं भी हैरान हो गई।

अतः मेरा नम्र निवेदन है गृहस्थों से, जो जीवन में योग साधना का लाभ उठाना चाहते हैं, इस सरल सूत्र को अपने जीवन में अपनाएँ। आज पर्यावरण की सुरक्षा के लिए कागज, बिजली आदि बचाने पर जोर दिया जा रहा है। छोटे–छोटे कागज के टुकड़ों का लेखन में प्रयोग करके, पुराने ग्रीटिंग कार्ड्स और शादियों के कार्ड का लिखने अथवा लिफाफे बनाने में प्रयोग करके पेड़ों को कटने से बचाया जा सकता है। बचे हुए धन का प्रयोग दान के रूप में किया जा सकता है। आवश्यकता है कि हम इस बिन्दु के प्रति सजग बनें और अनावश्यक खर्चों से बचें। अपने पिता जी से मैंने मितव्ययिता के इस गुण को सीखा और एक शिक्षिका होने के नाते, मैं अनेक बच्चों को ये शिक्षा दे पा रही हूँ अपने व्यवहार से।

अपरिग्रह – गृहस्थों के लिए

आज का युग योग प्रधान युग है। कलियुग का प्रकोप दिन प्रतिदिन बढ़ता जा रहा है। काम और अर्थ ही मानव जीवन के मुख्य उद्देश्य बन कर रह गये हैं। कामनाओं के दुष्चक्र में फँसा मानव अंधाधुंध अर्थ के पीछे दौड़ रहा है। और परिणाम कभी न समाप्त होने वाली

चिन्ताएँ, परेशानियाँ और रोग। योग व्यक्ति के जीवन में एक सुगन्ध की भाँति, सूरज की पहली किरण का नव संदेश लाने में सक्षम है। महर्षि पंतजलि ने योग के आठ अंग बताए हैं। जिसमें यम और नियम दो प्रथम अंग है।

अपरिग्रह का स्थान योग में अत्यधिक महत्वपूर्ण बताया गया है। अपरिग्रह का अर्थ है आवश्यकता से अधिक सामान का बहिष्कार। अर्थात् प्रत्येक व्यक्ति केवल सीमित वस्तुओं को ही अपने पास रखे। आज जिसके पास धन है, उसके पास वस्त्रों से ले कर प्रत्येक वस्तु का बाहुल्य होना एक सामान्य बात है। फैशन के इस युग मे नित प्रतिदिन नई वस्तुएँ बाजार में आकर्षक और लुभावनी लगती हैं। केवल संन्यासी ही आज महर्षि पंतजलि के बताए गए अपरिग्रह का पालन कर सकते हैं।

स्वामी शिवानंद ने अपरिग्रह का एक व्यावहारिक रूप जन समुदाय को दिया। उन्होंने कहा कि यदि तुम्हारे पास 10 कम्बल हैं तो उसमें से गरीबों और जरूरतमंदो को दान देते जाओ। अधिक संग्रह रखने में कोई हानि नहीं है। केवल उसमें से वितरण करते जाओ। और स्वामी सत्यानंद ने जब उनकी इस शिक्षा को व्यवहार रूप में अपनाया तो उन्हें बहुत आनन्द आया। और सच ही तो है, यदि हम अपने पास आवश्यकता से अधिक वस्तुओं का संग्रह न करके किसी को देते हैं, तो एक असीम आनन्द की अनुभूति होती है। प्रत्येक व्यक्ति नए वस्त्र, उपकरण आदि खरीदता रहता है। यदि प्रभु ने धन हमको दिया है, तो उसका भोग करें। परन्तु साथ ही साथ पुरानी और उपयोग करने लायक वस्तुओं को जरूरतमंदो को बाँटते जाएँ। और यही आज गृहस्थ का अपरिग्रह है।

गृहस्थ आश्रम में व्यक्ति धन उपार्जन करता है। दिन रात के परिश्रम से ही कार्य में सफलता संभव है। अतः किसी भी दृष्टि से गृहस्थ, संन्यास से हेय नहीं है; क्योंकि गृहस्थ आश्रम में ही व्यक्ति, दान का सुख उठा सकता है। एक संन्यासी तो स्वयं अपनी आवश्यकताओं के लिए गृहस्थों पर निर्भर करता है, वो क्या दान करेगा ? अतः गृहस्थ आश्रम में रहते हुए, संसार के भोग भोगते हुए , यदि हम मानसिक रूप से अपरिग्रह के इस व्यावहारिक रूप को अपना सकें तो हमारे जीवन का उत्थान अवश्य संभव है।

'देना, देना और देना' यही परमगुरु स्वामी शिवानंद की मुख्य शिक्षा है। यदि प्रत्येक व्यक्ति इस व्यावहारिक शिक्षा को अपने जीवन का एक अंग बनाए, और अपने जीवन का उत्थान करते हुए, औरों को भी प्रेरित करे तो एक नूतन विश्व की संरचना संभव है। और क्या हम पुनः रामराज्य की स्थापना नहीं कर पाएँगे। रामराज्य का अर्थ है, जहाँ प्रत्येक व्यक्ति सुखी और समृद्ध हो। तो आओ हम सब एक दिव्य मार्ग पर कदम बढ़ाएँ, जहाँ प्रभु हाथ पसारे हमें आनन्द और प्रसन्नता देने के लिए खड़े हैं। केवल आवश्यकता है हमारे एक कदम की।

ईश्वर प्रणिधान क्यों और किसलिए ?

योग में यम और नियमों में ईश्वर प्रणिधान एक ऐसा नियम है जिसका अभ्यास एकदम सरल है। **"यह एक ऐसा नियम है जो अकेला ही व्यक्ति को ईश्वर साक्षात्कार करा सकता है।" स्वामी चिदानंद।** महर्षि पंतजलि ने मानव को अपने ईश्वरत्व का अनुभव करवाने के लिए इस नियम को अत्यधिक महत्वपूर्ण बताया है। **"ईश्वर जो करता है अच्छा करता है।"** यही इसका सरलतम रूप है। **'हे ईश्वर तेरी इच्छा पूर्ण होगी मेरी नहीं।'** इस वाक्य को यदि हम बार–बार दोहराते हैं तो मन में एक गहन शांति का आभास सहज ही कर पाते हैं।

जीवन में परेशानी और तनाव का कारण है हमारा परिस्थितियों से विरोध । जो कुछ भी जीवन में हमारी इच्छा के प्रतिकूल होता है, हम उसे सहज ढंग से स्वीकार नहीं कर पाते और दुःखी हो जाते हैं। हमें सबको हमारे भाग्य के अनुसार ही अच्छा या बुरा मिलता है, यह हम अपने अन्दर में स्वीकार नहीं कर पाते हैं। प्रतिकूल परिस्थितियों में दो प्रकार की प्रतिक्रियाएँ होती हैं। या तो व्यक्ति राजसिक व्यवहार करता है अर्थात् प्रतिकूल को अनुकूल में बदलने का प्रयत्न करता है। या व्यक्ति तामसिक व्यवहार करते हुए विषाद और गहन निराशा में ही रहता है। तब क्रोध, तनाव ,चिन्ता और परेशानियाँ उसके पूरे चिन्तन को ढक लेते हैं। ऐसे व्यक्ति का दृष्टिकोण पूर्णतया नकारात्मक हो जाता है। और तब शुरू होती है दौड़ मनोचिकित्सकों के पास जाने की । ऐसा व्यक्ति काबलियत होते हुए भी अपना आत्मविश्वास खो बैठता है।

आज कलियुग के अधिकतर व्यक्ति इसी मनः स्थिति से गुजर रहे हैं। शान्ति और सुख का सर्वत्र अभाव है। रोग शारीरिक और मानसिक अपनी चरम सीमा पर हैं। वर्षो पूर्व दिए गये इस सरल नियम को यदि हम जीवन में अपनाते हुए, स्वयं को अपने ईश्वरत्व के प्रति सचेत करते हैं तो सहज ही एक नये जीवन की शुरूआत होती है। **"हम ईश्वर का अंश हैं, हमारे अन्दर उस ईश्वर के समस्त गुण हैं"** यदि इस एक वाक्य को ही हम विश्वास और श्रद्धा के साथ दोहराते हैं तो हमारे जीवन का काया कल्प हो सकता है। आवश्यकता है केवल थोड़े से विश्वास की ! थोड़े से प्रयत्न की!

अनुशासन सफलता का महत्वपूर्ण सोपान

'अनुशासन मानव सभ्यता का एक महत्वपूर्ण अंग है। हर जगह, हर कार्य तभी ठीक से संपादित हो सकता है अगर अनुशासन का पालन किया जाए। अनुशासन के अभाव में सुन्दर से सुन्दर व्यवस्था भी अपना प्रभाव मानस पटल पर नहीं छोड़ पाती। अनुशासन कई

तरह का होता है। एक अनुशासन जो सर्वमान्य होता है वह है स्कूल ,कालेज या विश्वविद्यालय का अनुशासन। सर्वप्रथम बालक के जीवन में अनुशासन की शिक्षा स्कूल जाने से ही शुरू होती है, जब उसे एक निश्चित समय पर सो कर उठना होता है और निर्धारित समय से पाठशाला पहुँचना होता है क्योंकि बालक अभी तक अपनी मर्जी का राजा होता है, प्रारंभ में उसे काफी कठिनाई होती है। खासकर जब उसे सुबह जल्दी उठने की आदत न हो। पर धीर–धीरे वह इस नए परिवेश के साथ सामंजस्य बिठा पाता है और रात को जल्दी सोना उसे अनिवार्य लगता है। जैसे–जैसे बालक बड़ा होता है उसे समझ आता है कि जीवन में कुछ नियम आवश्यक हैं। हर रोज अपना गृहकार्य करना, लिखना या याद करना आदि। और यहीं आवश्यकता होती है आत्मानुशासन की सुदृढ़ नींव डालने की। अगर पालक बचपन से बच्चे को आत्मनिर्भर बनने का प्रशिक्षण देते हैं, तो बच्चा स्वतः ही अपने समय का सदुपयोग करते हुए अपनी ऊर्जा को सही स्थान पर प्रयोग करना सीख जाता है। यही आधार उसके उज्जवल भविष्य का मार्ग सुनिश्चित करता है। परन्तु सर्वप्रथम आवश्यकता है कि पालकगण स्वयं भी अनुशासित हों। हम सब व्यवहार से जितना सीखते हैं उतना मौखिक शिक्षाओं से नहीं सीख पाते। यदि कुछ याद भी करते हैं तो वह हमारे मानस पटल पर एक दीर्घ चित्र नहीं बना पाता जो समय के साथ स्वतः ही धूमिल हो जाता है। उदाहरणतः अगर माता पिता रात को देर तक जागते हैं और सुबह देर से सो कर उठते हैं, तो बच्चों को सुबह जल्दी उठने का पाठ पढ़ाना अधिक लाभकारी नहीं हो पाता। । कुछ समय तक तो बच्चा बात मानता है पर बड़ा होने पर, वह भी उसी जीवन शैली को अपनाता है, चाहे अनचाहे जो उसने अपने प्रथम विद्यालय यानि घर में देखी थी।

समय के बदलते हुए परिवेश ने बच्चे, युवा, प्रौढ़ और वृद्ध सब को प्रभावित किया है। पुरानी भारतीय संस्कृति की मान्यताओं को ताक पर रख कर आज का मानव केवल क्षणिक भोग विलास को ही अपने जीवन की परिणति मान बैठा है। संयम, धैर्य, अनुशासन, संतोष जैसे नैतिक मूल्यों को आज केवल किताबों में लिखी हुइ शिक्षाओं के रूप में देखा जाने लगा है; जिन्हें पढ़ा तो जाता है पर व्यवहार में लाना असम्भव समझा जाता है और इसका परिणाम समाज में फैली हुई अराजकता के रूप में स्वयं ही परिलक्षित है।

अनुशासन जीवन के हर क्षेत्र में सफलता की बहुत महत्वपूर्ण आवश्यकता है। और यह अनुशासन किसी के दबाव का न हो कर स्वयं का होगा, तभी परिवर्तन संभव है। थोपा हुआ अनुशासन जीवन में स्थायी परिवर्तन नहीं ला सकता। धीरे–धीरे धैर्यपूर्वक यदि हम अपने समय के एक एक क्षण का सदुपयोग करना आरंभ करते हैं तो लाभ स्वतः ही दृष्टिगोचर होने लगता है। और लाभ भी इतना कि हम स्वयं आश्चर्य चकित रह जाते हैं।

अक्सर मैंने जीवन में यह पाया है कि बहुत सारे कार्य जिन्हें हम करना भी चाहते हैं, पसन्द भी करते हैं पर समय की कमी के कारण नहीं कर पाते । ऐसा क्यों ? यदि हम सूक्ष्मता से अपनी दिनचर्या का निरीक्षण करें तो, बहुत सी ऐसी गतिविधियाँ हमारे जीवन का अंग बन गई हैं जिनके द्वारा बहुत सा समय व्यर्थ चला जाता है, हमारे जाने बिना। उदाहरणतः खूब देर तक सोना क्योंकि रात को खूब देर तक जागते हैं। व्यर्थ के वार्तालाप में बहुत समय बीत जाता है। अगर हम समय के मूल्य के प्रति सजग रहना प्रारंभ करते हैं तो आरम्भ में अवश्य ही कठिनाईयों का सामना करना पड़ता है पर धीरे धीरे जैसे–जैसे पुरानी बुरी आदतों से छुटकारा मिलता है, हम समय का पूर्णतया सदुपयोग करते हुए अपने जीवन को व्यवस्थित करते हुए सफलता की ओर सुनिश्चित कदमों से आगे बढ़ पाते हैं। और इस जीवन को पूर्णता से जीते हुए प्रसन्नता और आनन्द का ऐसा स्त्रोत स्वयं के अन्दर ही प्राप्त करते हैं जिसकी हमने कभी कल्पना भी नहीं की थी।

अध्यात्म

'अध्यात्म को साधारणतया ईश्वर उपासना से ही जोड़ा जाता है। जो लोग ईश्वर की उपासना नहीं करते वह इस पथ के बारे में सोचते तक नहीं, चुनना तो दूर की बात। परन्तु अनेक संतों ने आधुनिक युग के बदलते परिवेश के अनुरूप अध्यात्म की एक ऐसी परिभाषा जन साधारण के समक्ष रखी है जो बुद्धिजीवियों को भी बहुत पसन्द आ रही है। और यदि सच कहूँ तो मैं भी उन्हीं में से एक हूँ। **परमहंस स्वामी निरंजनानंद सरस्वती के लेख में मैंने पढ़ा कि अध्यात्म का अर्थ है प्रवृत्ति से निवृत्ति की ओर जाना।** अर्थात् यदि अपने जीवन में हम संसार की वासनाओं, तृष्णाओं पर संयम का अंकुश लगाते हैं, तो वही अध्यात्म है। सर्वप्रथम तो हम इस बात को अच्छे से समझें कि हमारे दुःखों की जड़ हमारी इच्छाएँ हैं। है न हैरानी की बात ! परन्तु यदि आप मनन चिन्तन करते हैं तो धीरे–धीरे स्वयं इस कथन की सत्यता का भान होने लगता है। क्रोध, लोभ, मोह, मद और ईर्ष्या के मूल में, अपरोक्ष रूप से कहीं न कहीं कोई इच्छा ही तो सन्निहित रहती है। जब ज्यादा बरसात आती है; तो हम उससे दुःखी हो जाते हैं। उसी प्रकार सर्दी, गर्मी से भी अत्यधिक चिंतित और परेशान रहते हुए अनेक सुख उपभोग के साधनों की खोज में रहते हैं।

हमारा जीवन इस प्रकार केवल स्वार्थ के लिए व्यतीत होता है। थोड़ा बहुत दान देकर हम अपने कर्तव्य की इतिश्री समझ लेते हैं। और यह अनमोल जीवन ऐसे ही व्यर्थ चला जाता है। यदि हम अपने स्वभाव की कमियों को खोजना शुरू करें, तो लाखों कमियाँ

हमें दृष्टिगोचर होती हैं। परन्तु हम , अरे हमे ! इतना समय ही कहाँ है कि खुद को देखें? खुद को जानें ? हमारी चेतना तो पर चिंतन में ही लगी रहती है। पर दोष देखना, उनको वर्णन करना हमें अतिशय प्रिय है। अपने अंहकार को चुगली और निन्दा के द्वारा पोषित करते हुए, अपनी प्रत्येक तृष्णा को पूर्ण करते–करते, समय हाथ से रेत की भाँति फिसल जाता है। बुढ़ापे में आँख से दिखता नहीं, कान से सुनता नहीं, प्रभु नाम में मन लगता नहीं, तृष्णा का दामन छूटता नहीं।

यदि स्वामी जी द्वारा प्रदान की गई इस सरल परिभाषा का हम मनन, चिंतन और निदिध्यासन करते हैं तो जीवन की दिशा ही बदल जाती है। जब हम स्वयं को सुधारने का बीड़ा उठाते हैं तो अपनी अनेक कमजोरियों से हमारा सामना होता है। तब समझ में आता है कि कहना कितना आसान होता है और करना कितना कठिन है। सद्‌गुणों को धीरे–धीरे जब हम अपने जीवन का एक सहज अंग बनाते है तो अवगुण स्वतः ही हमारा दामन छोड़ देते हैं। समय के महत्व को समझते हुए; व्यावहारिक जीवन में अपने व्यक्तित्व को निखारते हुए अनेक सफलताएँ सहज ही हमारे चरण चूमने लगती हैं। बिन माँगे मोती मिले; माँगे मिले न भीख। जब हम इच्छा करनी छोड़ देते हैं तो इतना कुछ हमें मिलने लगता है कि हमारी झोली छोटी पड़ जाती है। जब हम दूसरों के बारे में सोचते हैं , प्रभु हमारे बारे में सोचने लगते हैं।

आसक्ति

आसक्ति की जड़ें कितनी गहरी ? सर्वप्रथम तो यह समझना कि यह आसक्ति है, फिर उसे छोड़ने का प्रयत्न करना ? कितना कठिन और कितना दुष्कर? जब तक मानव सोच पाए और उसका निदान सोचे, तब तक माया अपने रंगीन, लुभावने लिबास में इस कदर जकड़ लेती है कि न चाहते हुए भी वह आसक्ति के इस जाल में अशक्त अनुभव करता है। एक दिन जो बात सही लगती है, अगले दिन असंभव। ऐसी परिस्थितियों में मानसिक संतुलन बनाए रखना और भी कठिन लगता है। कभी–कभी घोर निराशा और अवसाद का अनुभव होने लगता है। लगता है अरे ! यह तो कदापि नहीं छूटेगी। बौद्धिक ज्ञान सब विस्मृत हो जाता है। लोभ, मोह और क्रोध की तीव्र आँधी कुछ समय के लिए इस ज्ञान को पूर्णतया जड़ से उखाड़कर अपने साथ ले जाती है। **स्वामी शिवानंद ने बार–बार सजग और सतर्क रहने पर जोर दिया है।** साधक यदि यह विचार करता है कि वह सुरक्षित है, तो यह उसकी सबसे बड़ी भूल है, जो उसे गहरे गढ्ढे में गिरा देती है। बाद में केवल पश्चाताप ही उसकी नियति बन कर रह जाता है। कितनी गहरी और सटीक शिक्षा है !

जीवन की एक–एक साँस बहुमूल्य है। सजगता रखते हुए, एक–एक पग पर सावधान रहते हुए ही साधक प्रगति की राह पर धीरे–धीरे कदम बढ़ा सकता है जिस प्रकार एक छोटी सी लापरवाही वाहन चालक के भयंकर दुष्परिणाम का कारण बनती है, जिसके फलस्वरूप दुर्घटना में अनेक लोग घायल होते और मृत्यु को प्राप्त होते हैं। उसी प्रकार थोड़ी सा भी अहंकार सूक्ष्म रूप में आकर, आसक्ति और मोह के साथ मिलकर साधक को पथ भ्रष्ट कर देता है। विवेक और वैराग्य की अनुपस्थिति में साधक पुनः पुनः इन दुष्प्रवृतियों के जाल में फँसता जाता है। जीवन के इस भँवर में पूर्णतः फँस जाता है। पग–पग पर इन वासनाओं के नूतन रूप उसे पथभ्रष्ट करते हुए भ्रमित कर देते हैं। सतत, सजगता, सतर्कता ही निरीह साधक को एक संबल प्रदान करती है। अनथक प्रयास , स्वाध्याय, मनन, चिंतन एक ऐसी पूंजी है, जो साधक को सचेत करते हुए, उसकी रक्षा कर सकती है।

साधना के दुर्गम पथ पर पग–पग पर जहरीले सर्प और नाग, तृष्णा, मोह, इच्छाओं के रूप में साधक को डसते रहते हैं। सद्‌गुरु की प्राप्ति और उनका कुशल निर्देशन ही साधक को इन वासनाओं से सुरक्षा प्रदान करता है। गुरु का सत्संग, उस पर पूर्ण श्रद्धा और विश्वास, साधक को इस मार्ग पर प्रगति करने में मदद करते हैं। एक सद्‌गुरु की प्रेरणा गहन अंधकार में दिव्य ज्योति के समान है। सद्‌गुरु की शिक्षाओं को आत्मसात करते हुए उनका शत–प्रतिशत पालन करना ही वह दिव्य ज्योति है, जो प्रत्येक परिस्थिति में साधक का सहारा बनकर उसे हर दुर्घटना से बचाती है।

"गुरु को माला अर्पण करने अथवा पूजा करने से अधिक महत्वपूर्ण है, गुरु की आज्ञा का पालन करना।" –परम गुरु श्री स्वामी शिवानंद

माया की चाल

आत्मसाक्षात्कार के दिव्य पथ के हर पथिक को माया रूपी मील का पत्थर पार करना पड़ता है। क्रोध, ईर्ष्या, लोभ, मोह, अहंकार भी बहुत प्रबल हैं। माया इन्हीं को अपने अस्त्र–शस्त्र के रूप में प्रयोग करते हुए जीव को अपने जाल में ऐसा फँसाती है कि जीव चाहकर भी उस मज़बूत जाल की बेड़ियाँ नहीं काट पाता। तृष्णा माया का सबसे अचूक और अमोघ अस्त्र है। एक वेश्या की तरह तृष्णा नए–नए रूप लेकर स्वयं को प्रस्तुत करती है। जिससे बड़े–बड़े ऋषि मुनि भी नहीं बच पाते हैं, तो मनुष्य का तो कहना ही क्या ? पुराणों में ऐसे कई उदाहरण आए हैं – जैसे ऋषि विश्वामित्र माया के जाल में फँसकर अपनी तपस्या छोड़ बैठे। उन्होंने कई वर्ष मेनका नाम की अप्सरा के संग गृहस्थ के भोग भोगते हुए व्यतीत किये। तृष्णा जब आती है तो अपने साथ अपनी चांडाल चौकड़ी को जिसमें लोभ, मोह,

क्रोध, और अहंकार प्रमुख हैं, साथ लेकर आती है। और एक साधक सजग रहते हुए भी अनजाने में तृष्णा के जाल में फँस जाता है। साधकों, तपस्वियों को तो माया और भी नूतन नवीन रूप में लुभाती है। जैसे शिष्य बनाने का लोभ, आश्रम बनाने का लोभ और इस तरह संन्यासी, एक गृहस्थ आश्रम छोड़कर दूसरे आश्रम की तृष्णा में फँसकर अहंकार, क्रोध, लोभ के जाल में पहले की अपेक्षा अधिक जकड़ा जाता है। यह सब इतना सूक्ष्म होता है कि संन्यासी को पता ही नहीं चलता।

तन के जोगी सब भए, मन से जोगी कोय। कह के सब विधि पाइए, जो मन जोगी होय।। –संत कबीर

इस प्रकार तन पर गेरुआ पहन कर भी मन संसार की वासनाओं में लिप्त रहता है और साधक का पतन निश्चित रूप से हो जाता है। यदि साधक गृहस्थ आश्रम में रहते हुए सजग रहता है, सावधान रहता है, तो मन से संन्यासी होकर प्रत्येक कर्म करते हुए भी कर्म बंधन में नहीं पड़ता। श्री कृष्ण ने गीता में अर्जुन को स्पष्ट रूप से यही उपदेश दिया है कि

"कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन।"

कर्म करते हुए फल की कामना मत करो। केवल और केवल कर्म करना मनुष्य के सामर्थ्य में है। फल को प्रभु पर छोड़ देना चाहिए। हम में से कितने लोग हैं, जो इस साधारण सी बात को जानते हुए भी अपने जीवन में अपनाते हैं? कर्म करने से पूर्व ही उसके फल की सुंदर कल्पनाएँ हमारी दृष्टि को धुँधला करते हुए, हमारी मानसिक क्षमता को बहुत सीमा तक घटा देती हैं। यदि फल हमारी आशा के अनुकूल न हो, तो फिर निराशा के बादल हमें चारों ओर से ढक लेते हैं। ऐसे समय में क्रोध का आगमन होता है। परंतु क्रोध किस पर? हम अपनी अज्ञानता में किसी भी व्यक्ति को दोषी मानकर उस पर क्रोध करते हैं और क्रोध हमारी रही सही बुद्धि को भी नष्ट कर देता है। बुद्धिहीन व्यक्ति को अगर पागल न कहा जाए, तो क्या कहा जाए? वर्षों की कमाई कुछ क्षणों में क्रोध के भीषण दावानल में भस्म हो जाती है। ऐसी है माया की मोहिनी चाल!

प्रभु की असीम कृपा होने से साधक को एक सच्चे सद्गुरु की प्राप्ति होती है। गुरु के आने से तो मानो जीवन में बहार ही आ जाती है। मुरझाई कली पुनः स्वतः ही खिल जाती है। वर्षा ऋतु में जैसे ठंडी बयार तन–मन को प्रसन्न कर देती है, वैसे ही सद्गुरु साधक के अंतर्मन को सुवासित करते हुए उज्जवल कर देता है। और माया? वह तो शुरू में बिल्कुल नहीं डरती। और अधिक प्रबल होकर नए–नए अस्त्रों का प्रयोग करने से भी नहीं चूकती। ऐसे में आवश्यकता है साधक के सजग रहने की। उससे भी अधिक आवश्यक है अपने सद्गुरु के चरणों में समर्पण करने की। धीरे–धीरे साधक जब सद्गुरु की आज्ञा का पूर्णरूपेण पालन करता हुआ साधना के पथ पर बढ़ता है, तो उसका मन निर्मल होने लगता है। ऐसे शिष्य पर सद्गुरू के सुरक्षित छत्र में आने के बाद माया की पकड़ शिथिल होने

लगती है। पर माया शीघ्रता से हार मानने वाली नहीं है। नए–नए रूप लेकर मोह के रूप में, आसक्ति के जाल में साधक को फँसाने का हर प्रयास करती है। जैसे – जैसे गुरु की आज्ञा (चाहे जो भी हो) साधक श्रद्धापूर्वक अनुसरण करता है, तो माया कमज़ोर होने लगती है। आवश्यकता है गुरु पर अटूट श्रद्धा और विश्वास की।

गुरु की हर आज्ञा, आदेश में साधक का हित होता है। जैसे माता पिता तीन साल के छोटे बालक को बड़ी गाड़ी खरीद कर नहीं देते हैं, क्योंकि वे जानते हैं कि बच्चा उसे संभाल नहीं पाएगा, चलाना तो बहुत दूर की बात है। इसी तरह गुरु साधक को उसके स्तर के अनुसार साधना देते हैं, पर कई बार साधक अपनी क्षुद्रबुद्धि के कारण ऊँची और कठिन साधना करना चाहता है। अपने अनुभव से मुझे लगता है कि यह भी माया की चाल है और साधक! गुरु में विश्वास की कमी के कारण उस चाल में फँस जाता है। एक सच्चे पिता की तरह सद्गुरु साधक की विश्वास की नीव मजबूत करता है। जैसे–जैसे सद्गुरु की कृपा का साधक अनुभव करने लगता है, वह माया की टेढ़ी चाल को थोड़ा–थोड़ा समझने लगता है।

'[जब अहंकार (मैं) की चाल साधक को दिखने लगती है, तब माया बहुत देर तक नहीं ठहर पाती। माया को जाना ही पड़ता है। बिल्कुल वैसे ही जैसे एक खरगोश जो शेर की खाल पहन कर सब को डराता है, पहचाने जाने पर भाग जाता है।' –रामकृष्ण परमहंस]

सबसे पहले इच्छा, क्रोध, लोभ, मोह की पकड़ शिथिल होती है। पर अहंकार की 'मैं' सबसे प्रबल है और सबसे कठिन भी है। पहचान में आने के बाद उसे जाना ही पड़ता है। **'मैं यंत्र और प्रभु यंत्री' –स्वामी सत्यानंद।** यह भाव सुदृढ़ करने से' मैं' रहते हुए भी कुछ हानि नहीं कर पाती है।

'मैं यह मन और शरीर नहीं हूँ, मैं एक आत्मा हूँ जो सत्, चित्, आनंद स्वरूप है।' – स्वामी शिवानंद। ऐसी साधना का भाव दृढ़ करते –करते माया स्वतः बहुत निर्बल हो जाती है। उसे साधक को मुक्त करना ही पड़ता है। सद्गुरु केवल मार्गदर्शन ही कर सकता है। कदम तो साधक को स्वयं ही उठाना पड़ता है। सतत् प्रयास, सजगता और असीम श्रद्धा और विश्वास ही साधना की सफलता निश्चित करते हैं।

प्रभु की कृपा और केवल प्रभु की कृपा से ही मानव का भाग्योदय होता है। वह इस दिव्य मार्ग की महिमा को समझ पाता है। अन्यथा खाना, पीना, सोना और सुख–दुःख के झूले में झूलते–झूलते जीवन व्यर्थ चला जाता है। और ईश्वर! अरे वह तो हम सब का परम पिता है। हमें सबसे अधिक स्नेह करता है। हमें उत्तम से उत्तम भेंट देना चाहता है। आवश्यकता है उसके आज्ञाकारी और योग्य बच्चे बनने की। सद्गुणों को अर्जित करते हुए

यदि हम सादा जीवन व्यतीत करते हैं, जिसमें छल, कपट और धोखा न हो, प्रभु हमसे बहुत प्रसन्न होते हैं। एक सरल, निष्कपट बालक सहज ही सबका हृदय मोह लेता है। उसकी एक भोली मुस्कान ही हमारे हृदय के तार झंकृत कर देती है। अगर हम एक बच्चे की निष्कपटता, सहजता, भोलापन अपने व्यवहार, भाव में ला सकें, तो ईश्वर अधिक समय हम पर कृपा करने में नहीं लगा सकता। जरूरत है तो केवल प्रगाढ़ श्रद्धा और विश्वास की। प्रभु को अपना सबसे प्रिय संबंधी जानते हुए, मानते हुए सच्चे दिल से प्रार्थना करने पर उसे आना ही पड़ता है। जब साधक का पात्र अपनी पूर्ण दिव्यता के साथ स्वच्छ, निर्मल शक्ति धारण करने योग्य हो जाता है, तब प्रभु आते हैं। और साधक को वह सब कुछ देते हैं, जिसकी कामना उसने स्वप्न में भी नहीं की थी।

प्रिय साधकों आओ , डरो मत । दोनो बाहें फैलाए प्रभु तुम्हारी प्रतीक्षा कर रहें हैं। मार्गकी दुर्गमता साधक को सबल बनाती है। निष्काम कर्म और साधना करते–करते साधक का भाग्य प्रबल होने लगता है। फिर मार्ग चाहे कितना लंबा हो ,कितना कठिन हो , साधक लक्ष्य को देखता हुआ दिव्य पथ पर एक –एक कदम बढ़ाता जाता है और करुणानिधि, दयानिधि भक्तवत्सल प्रभु को आना ही पड़ता है। नारद भक्ति सूत्र में स्पष्ट लिखा है – **''भगवान अपने भक्तों के हृदय में निवास करते हैं ।"**

ज्ञान

'साधारणतया ज्ञान शब्द का अर्थ केवल विद्यालय और उच्च शिक्षा प्राप्त करने हेतु जो अध्ययन करके एकत्र किया जाता है, उससे लिया जाता है। अधिकतर व्यक्ति बालक के स्कूल जाने के पहले दिन से उसकी संपूर्ण शिक्षा ग्रहण करने तक ही ज्ञान अर्जित किया हुआ है, जानते हैं। परंतु यह धारणा ठीक होते हुए भी पूर्णतया सत्य नहीं है। जिस क्षण बालक माँ के गर्भ में आता है, उसकी शिक्षा प्रारंभ हो जाती है। गत जन्मों के संस्कारों की पूंजी लेकर, नए पर्यावरण से अनेक शिक्षाएँ आत्मसात करते हुए व्यक्ति जीवन रूपी यात्रा पर कदम बढ़ाता है। प्रत्येक अवस्था में व्यक्ति की रुचि भिन्न होती है। बाल्यावस्था में जहाँ उसको खिलौनों में रुचि होती है, युवावस्था में कैरियर की चिंता उसे व्यथित करती रहती है। गृहस्थाश्रम में प्रवेश पाकर पत्नी, बच्चों और परिवार की जिम्मेदारी उसे व्यस्त कर देती है। विभिन्न समस्याओं से जूझते हुए, विपरीत परिस्थितियों का सामना करते हुए अनेक व्यक्ति दुःख और परेशानी में ही जीवन व्यतीत कर देते हैं। वृद्धावस्था का भय , अनेक रोग और उनका निदान उसे असमय ही अशक्त बना देता है।

पुस्तकों का ज्ञान एक सीमा तक तो धन अर्जन करने में मनुष्य की सहायता करता है, परंतु उसे स्थायी सुख और शान्ति प्रदान नहीं कर सकता। और बहुत बार मानव सुख और शान्ति के लिए तरस जाता है, जिस प्रकार मरुस्थल में यात्री पानी की एक बूंद पाने की आशा में मीलों दूर तक चला जाता है। संसार के सुख साधन उसे एक मृग मरीचिका की तरह छलते रहते हैं। कहाँ जाए ? क्या करें ? क्या यही उसका भाग्य है ? मैंने कौन से बुरे कर्म किए थे ? ऐसे बहुत सारे प्रश्न दिन–रात उसके मानस पटल पर घूमते रहते हैं। संसार के क्षणिक सुख उसकी आंतरिक प्यास को बुझाने में असमर्थ रहते हैं।

प्रभु की कृपा से यदि व्यक्ति सच्चे सुख की खोज करता है, तो प्रभु अवश्य ही उसकी मदद करते हैं। एक संत का जब जीवन में आगमन होता है, तब सत्संग व्यक्ति को एक उचित मार्ग की ओर प्रेरित करता है। सत्संग का अर्थ है 'सत्य का साथ'। प्रत्येक ग्रंथ में सत्संग की महिमा का वर्णन किया गया है। बिना सत्संग के न तो ज्ञान मिलता है न ही प्रभु। सच्चा ज्ञान तो केवल प्रभु को प्राप्त करने का ज्ञान है। आत्म चरित्र के बल से युक्त होकर जब व्यक्ति संसार के छल प्रपंचों के बीच रहते हुए स्वयं को मानसिक रूप से पृथक रख पाता है, तब उसके जीवन में सुख का प्रवेश होता है। ऐसा व्यक्ति विषम परिस्थितियों में भी अपना धैर्य बनाए रखता है। सुख और दुःख में सम रहते हुए, प्रत्येक परिस्थिति को ईश्वर का प्रसाद मानकर व्यक्ति जीवन जीने की कला सीखता है। राग और द्वेष कम होने लगता है।

सच्चा ज्ञान केवल और केवल ईश्वर की कृपा से ही प्राप्त होता है। श्रद्धा और विश्वास रूपी वस्त्र धारण करके मनुष्य तर्क को छोड़कर किसी संत की शरण में जाता है , तो वह अपने जीवन के अंतिम लक्ष्य प्रभु को जान पाता है। किसी संत के पास जाने की असमर्थता कई व्यक्तियों को परेशान, व्यथित कर देती है। ईश्वर को सच्चे दिल से पुकारने पर वह स्वयं ही गुरु बन कर आ जाता है। एक सच्चे शिष्य की प्रत्येक गुरु को खोज रहती है।

उठो ! जागो ! यह बहुमूल्य जीवन व्यर्थ न गवाँओ। सद्ग्रन्थों और सद्साहित्य का अध्ययन, श्रवण, मनन और चिंतन करते हुए अपने जीवन का उत्थान करो। अपने जीवन में उन शिक्षाओं का पालन करते हुए सेवा, नम्रता, सत्य, प्रेम, दया, कल्याण, सहनशीलता और धैर्य जैसे दिव्य गुणों को अपनाओ। स्वार्थ को छोड़कर परोपकार के मार्ग का चयन करो। परोपकार के मार्ग पर अनेक संत स्वतः ही मिल जाएँगे। जीवन के एक–एक क्षण का सदुपयोग करो। **'परमार्थ में ही स्वार्थ है।'** अनंत सुख और प्रसन्नता प्राप्त करने का केवल और केवल यही सरलतम मार्ग है।

चेतना

'चेतना का अर्थ साधारणतया जागने से लगाया जाता है। परन्तु चेतना का व्यापक अर्थ जाग्रत अवस्था नहीं है। प्रत्येक मनुष्य के अन्दर मन, बुद्धि, चित्त अहंकार के साथ–साथ एक ईश्वर का अंश भी होता है। ईश्वर का यह रूप सामान्यतः सुप्त ही रहता है। परन्तु जब ईश्वर की कृपा होती है और व्यक्ति अच्छे कर्म करते हुए परमार्थ के मार्ग पर कदम रखता है, तभी वह इस उच्चास्तरीय चेतना के प्रति सजग होता है। आदि काल से संत कहते आ रहे हैं कि परमार्थ में प्रत्येक मानव को अपना स्वार्थ देखना चाहिए। परन्तु ईश्वर कृपा के बिना परमार्थ कर्म करने की बुद्धि भी सहज ही नहीं आ पाती । और यदि मानव साहस के साथ नेक कर्म करने का दृढ़ निश्चय कर लेता है, तो करुणानिधान परमेश्वर अपनी कृपा का अक्षय खजाना उस व्यक्ति पर लुटा देते हैं।

एक बार इस चेतना का यदि न्यूनतम अंश भी जागृत हो जाता है केवल एक पल के लिए तो व्यक्ति जान जाता है कि वास्तविक आनन्द और प्रसन्नता का खजाना उसके अन्दर ही है। फिर शुरू होती है उसकी यात्रा, चेतना के निम्न स्तर से उच्च स्तर की। **परम् गुरु स्वामी शिवानंद ने सेवा का सरलतम सूत्र संपूर्ण विश्व को दिया।** जब व्यक्ति सेवा भाव के साथ करता है तो स्वयं ही ईश्वर कृपा का अधिकारी बन जाता है। पूर्व संचित संस्कारों और कर्मों का क्षय होना प्रारम्भ हो जाता है। किसी भी रूप में की गई सेवा अवश्य फल प्रदान करती है। कई बार सेवा ग्रहण करने वाला प्रतिदान नहीं करता, तो व्यक्ति निराश हो कर दुःखी हो जाता है। परन्तु स्वामी जी ने लिखा है कि तुम सेवा करते जाओ! और क्या **श्री कृष्ण ने गीता में 'कर्म करो, फल की चिन्ता मत करो' की शिक्षा को सर्वाधिक महत्वपूर्ण नहीं बताया है ?** भगवान श्री कृष्ण ने गीता में कहा है कि **कर्म के फल का त्याग करने से असीम शांति का प्रादुर्भाव होता है!**

तत्त्वम् असि

तत्त्वम् असि वेदान्त का महावाक्य है। इसका अर्थ है कि तुम वही हो अर्थात् तुम ईश्वर ही हो। तुम ब्रह्म ही हो। परमगुरु शिवानंद को उनके गुरु स्वामी विश्वानंद ने इसी साधना में दीक्षित किया । प्रत्येक मानव के भीतर प्रभु की संपूर्ण शक्तियाँ विद्यमान हैं। संसार में आकर विषयों से अपना संबंध जोड़कर, आज मानव स्वयं की इन शक्तियों से अनभिज्ञ है। जिस प्रकार माता, पिता के अधिकतर गुण और लक्षण बच्चों में सहज ही दृष्टिगोचर होते हैं, उसी प्रकार ईश्वर तो हमारा परमपिता है। फिर उस नियंता के सारे गुणों और शक्तियों का समावेश क्या हमारे भीतर नहीं है ? आज आवश्यकता है कि हम

अपनी इन सुप्त शक्तियों को जगाने का एक प्रयास करें। पूर्ण विश्वास के साथ, अपनी समस्त सामर्थ्य के साथ ! हम सब एक समर्थ पिता की सन्तान हैं। अतः उनकी सारी शक्तियों के हम सहज ही अधिकारी हैं। अनेक जन्मों में अपने स्वार्थों का पोषण करते हुए हम अपने उस शाश्वत सम्बन्ध को भुला बैठे हैं। वेदान्त का यह महावाक्य साधारणतया ज्ञान योग वाले साधकों को दिया जाता है। परमगुरु स्वामी शिवानंद एक ऐसे संत थे जिन्हें भविष्यद्रष्टा कहा जाए तो अतिशयोक्ति न होगी। उन्होंने कलियुग में मानव के पतन का अनुमान आज से कई वर्ष पहले से ही लगा लिया था। अतः उन्होंने योग को मुख्यतः चार भागों में विभाजित करते हुए, प्रत्येक व्यक्ति की मानसिकता के अनुरूप साधना देने का प्रावधान बनाया। भावुक व्यक्ति के लिए भक्ति योग। कर्म योग जो लोग बहुत मेहनती हैं। और विवेचनात्मक बुद्धि वाले लोगों के लिए ज्ञान योग। ईश्वर के चरणों में समर्पण करते हुए, जब अपने प्रत्येक कर्म को व्यक्ति करता है तो उसके जन्मों के संचित कर्मों का क्षय प्रारंभ हो जाता है। कर्मों का क्षय होने से ईश्वर की शक्ति का अनुभव व्यक्ति सहज ही अपने अन्दर करने लगता है। परमार्थ अथवा परोपकार के मार्ग पर चलते हुए प्रत्येक कृति में ईश्वर की शक्ति का रूप देखते हुए, निष्काम भाव का उदय स्वयं ही होने लगता है। कैसा मोह ? कैसी आसक्ति ? कैसा क्रोध ? कैसा संग्रह और किसके लिए? कर्मक्षय ही इस जीवन का प्रमुख उद्देश्य है, यह भाव दृढ़ करने से वैराग्य का उदय, विवेक का आगमन स्वतः ही होने लगता है।

अध्ययन, मनन, और निदिध्यासन

'प्रगति के दिव्य पथ पर आगे बढ़ने के लिए अध्ययन एक महत्वपूर्ण प्रक्रिया है। सद्साहित्य, सदग्रन्थों का अध्ययन जहाँ व्यक्ति को सफलता के चरम शिखर पर ले जा सकता है, वहीं अश्लील और निम्न साहित्य बुद्धि को भ्रष्ट करने में पूर्णतया सक्षम है। आज का युग विज्ञान का युग है। दूरदर्शन ने पुस्तकों का महत्व अत्यधिक कम कर दिया है। अपना खाली समय प्रत्येक व्यक्ति अधिकतर दूरदर्शन के सामने व्यतीत करता है। परन्तु प्रत्येक क्षेत्र में पुस्तकों का आज भी उतना ही महत्वपूर्ण योगदान है, जितना प्राचीन काल में था । व्यक्ति का जीवन शनैः–शनैः अत्यधिक मशीनी होता जा रहा है। काम, काम, और काम! तब थोड़ा बचा समय दूरदर्शन पर सीरियल देखने में बिताना सबको सरलतम प्रतीत होता है। सत्संग का नितांत अभाव है। ऐसे में सद्ग्रन्थों का सत्संग अत्यधिक सार्थक विकल्प हो सकता है। महान व्यक्तियों की जीवन कथाएँ, शिक्षाएँ जब पुस्तकों के रूप में आत्मसात की जाती हैं, तब वे गहरी छाप छोड़ती हैं। परंतु अधिकतर व्यक्ति इस छाप से अध्ययन के बाद भी वंचित रह जाते हैं। इसका एक महत्वपूर्ण कारण है कि व्यक्ति पढ़ता तो अवश्य है, परंतु मनन, चिंतन नही करता। मनन का अर्थ है अध्ययन के पश्चात मन में उसको बार बार दोहराना। उसका सतत् चिंतन और व्यावहारिक प्रयोग ही पूर्ण लाभ प्रदान

कर पाता है। सरसरी तौर पर पढ़ा हुआ सद्साहित्य भी अधिक प्रभाव नहीं छोड़ पाता। रामायण और महाभारत जैसे दिव्य ग्रंथों का अध्ययन अनेक व्यक्ति नित्य प्रतिदिन करते हैं। परंतु विरले ही श्री राम के चरित्र को समझ पाते हैं। और अपना जीवन उत्थान की ओर ले जाने में सक्षम होते हैं। गीता हिंदुओं का एक ऐसा ग्रंथ है, जो पूर्णतया धर्म निरपेक्ष है। परंतु कितने लोग उसको गहराई से समझ पाते हैं।

अतः आवश्यक है कि हम सदग्रंथों का अध्ययन करें, उनकी शिक्षाओं का मनन करें और निदिध्यासन के द्वारा उनको अपने जीवन में उतारने का प्रयास करें। भारतवर्ष ऋषियों, मुनियों और तपस्वियों की जन्मभूमि रहा है। विश्वशांति और विश्वबंधुत्व का संदेश भारत के अनेक महात्माओं ने विश्व को दिया। स्वयं के त्याग, तप और उज्जवल चरित्र के द्वारा उन्होंने पाश्चात्य जगत की निरर्थक मान्यताओं को धूमिल किया है। स्वामी विवेकानंद और महात्मा गाँधी जैसे अनेक महान पुरूषों ने विदेशियों को भारत की अद्वितीय धरोहर का लोहा मानने पर विवश किया। अहिंसा, सत्य ,धैर्य और क्षमा जैसे दिव्य गुणों को प्रत्येक व्यक्ति अपने जीवन का एक महत्वपूर्ण अंग बनाकर लोगों के दिलों पर राज्य कर सकता है। जीवन के उत्थान, आनंद और प्रसन्नता कि लिए यह अत्यंत आवश्यक सोपान है।

तो आओ ! हम भारत की इस अमूल्य निधि को सुरक्षित रखें। सद्ग्रंथों का अध्ययन, मनन और चिंतन करें। उनकी शिक्षाओं को अपने जीवन मे उतारें और इसी धरती पर स्वर्ग का निर्माण करें।

वाणी का मौन, मन का मौन

मानव के जीवन काल में वाणी का अत्यधिक महत्वपूर्ण स्थान है। आँखें, शरीर के हाव भाव और वाणी तीन मुख्य माध्यम हैं जिनके द्वारा व्यक्तित्व की बाह्य अभिव्यक्ति संभव है। मन यदि हमारा दर्पण है तो, वाणी उसका प्रकटीकरण है। वाणी का प्रयोग मनुष्य प्रत्येक पल जीवन की जागृत अवस्था में करता है। वाणी का दुरुपयोग व्यक्ति के अपने व्यक्तित्व पर निर्भर करता है। यदि वाणी का प्रयोग दूसरों को सांत्वना देने के लिए, उनके दुःख दूर करने की भावना से करते हैं तो वह वाणी ईशमय, जगदीशमय हो जाती है। सत्संग में संतजन वाणी के माध्यम से अनेक लोगों की जीवनधारा ही बदल देते हैं। संतों का एक–एक शब्द गहन ज्ञान से आपूरित होने के साथ–साथ उनकी दिव्य ऊर्जा से ओत प्रोत रहता है। और सत्संग में जब व्यक्ति उनकी दिव्य उपस्थिति में उनके मुखारविन्द से उन मोतियों को ग्रहण करते हैं तो मानो अमृत रस ही पीते हैं।

जहाँ वाणी का इतना अधिक महत्व है, वहाँ वाणी के मौन का उससे भी अधिक महत्व है। यदि अनावश्यक बोला जाए या दुखदायी बात कही जाए तो वही शब्द तीर की भाँति

हृदय का भेदन करने में संभव है। शब्द की चोट व्यक्ति को शत्रु भी बनाने में सक्षम है। अतः अनेक मनीषियों ने वाणी के उपयोग पर अंकुश लगाने को बहुत महत्व दिया है। वाणी ऊर्जा क्षय का प्रमुख साधन है। यदि वाणी का प्रयोग सावधानी पूर्वक किया जाये तो समय और ऊर्जा दोनों की बचत संभव है। वाणी का प्रयोग अधिक करने से मन भी अत्यधिक चंचल हो जाता है। विचार व्यक्ति की ऊर्जा हनन करने का एक दूसरा मुख्य मार्ग है। अनेक बुद्धिजीवी अपनी ही दुनिया में रहते हुए निरंतर विचारों के द्वारा अपनी मानसिक शांति को न केवल भंग करते हैं, अपितु अपने विचारों की तरंगों से वातावरण को प्रभावित करते हैं।

अतः प्रसन्नता और शांति प्राप्त करने के इच्छुक, प्रत्येक व्यक्ति को वाणी के प्रयोग के प्रति अत्यधिक सजग रहना चाहिए। 'पहले तोलो फिर बोलो' यह कहावत प्रत्येक व्यक्ति को अपने जीवन में अभ्यास के द्वारा अपनानी चाहिए। वाणी का न्यूनतम प्रयोग ही, मन को शांत करने का एक अचूक अस्त्र है। वाणी का मौन रखने से मन स्वतः ही अंतर्मुखी हो जाता है। जो ऊर्जा बचती है, वह आध्यात्मिक ऊर्जा में बदल जाती है। विचार भी न्यूनतम ही आते हैं। और मौन का अभ्यास नियमित करने से, धीरे–धीरे एक अवस्था ऐसी आती है, जब मन स्वयं विचार शून्य होने लगता है। वास्तव में मन का स्वयं कोई भी अस्तित्व नहीं है। मन तो एक कल्पना मात्र है। विचारों से मन की संरचना होती है। अतः विचार शून्यता की अवस्था प्राप्त करने के इच्छुक प्रत्येक व्यक्ति को वाणी का मौन रखना ही होगा।

आरंभ में अवश्य यह कठिन है, परन्तु धीरे–धीरे अभ्यास के द्वारा व्यक्ति मौन के अनगिनत लाभ का अनुभव स्वयं कर पाता है। यही अनुभव इस कठिन व दिव्य मार्ग पर उसका पथ प्रशस्त करते हैं। अनुभवों की इस पूंजी को संचित करते हुए, व्यक्ति शनैः–शनैः इस अनंत यात्रा का एक पथिक बनता है। मन का मौन इस यात्रा का एक महत्वपूर्ण पड़ाव है, जहाँ से उसकी अंतर्यात्रा को न केवल गति प्राप्त होती है अपितु प्रसन्नता उसके स्वभाव का एक सहज अंग बन जाती है। प्रतिकूल परिस्थितियों में भी मन अत्यधिक शांत रह पाता है। और यहीं से प्रारंभ होती है उसके द्रष्टा बनने की यात्रा।

नाहम् कर्ता नाहम् भोक्ता ईश्वर ही कर्ता ईश्वर ही भोक्ता

परमहंस स्वामी निरंजनानंद की यह शिक्षा एक गहन बोध को जाग्रत करने में सक्षम है। गीता में भगवान श्री कृष्ण ने कर्म फल के त्याग को अत्यधिक महत्वपूर्ण बताया है। कर्म करने पर ही हमारा अधिकार है, कर्म के फल पर नहीं। कर्म के फल का त्याग करने से असीम शान्ति का अनुभव होता है। परन्तु कर्म के फल का त्याग करन इतना सरल भी तो नहीं है।

स्वामी जी की इस शिक्षा को पढ़ने के पश्चात् जब मैंने मनन, चिंतन किया तो समझा कि यह गीता की शिक्षा से कितनी मिलती जुलती है। साधारण से साधारण काम की सफलता पर भी मन खुशी से झूम उठता है। यदि व्यक्ति हमारी आलोचना करता है अथवा उस काम में कोई त्रुटि निकालता है, तब हम सहन नहीं कर पाते। अधिकांश व्यक्ति, अपनी गलती मानना तो दूर की बात, सुनना भी नहीं चाहते। कर्तापन का अभिमान ही मुख्यतः हमारे अहं का पोषण करता है। जब हम प्रत्येक कार्य की सफलता का श्रेय स्वयं ले लेते हैं, तो उसका मुख्य कारण है कि हम स्वयं को कर्ता मानते हैं। यदि हम कर्म करते हुए धीरे–धीरे ज्ञान को अपने भीतर रोपित करते हैं, तो समझ पाते हैं कि ईश्वर की कृपा के फलस्वरूप ही प्रत्येक कर्म किया जा सकता है। और हम केवल यन्त्र हैं। यदि अपने इस यन्त्र के द्वारा हम निर्धारित कर्मों को कर पाते हैं तो प्रभु की असीम कृपा के पात्र सहज ही बन जाते हैं। आवश्यकता है केवल अपने कर्तव्य के प्रति सजग रहने की । कर्म करते हुए निःस्वार्थ भाव लाने से धीरे–धीरे कर्तापन का अभिमान गलने लगता है। यद्यपि यह प्रक्रिया बहुत धीमी है, परन्तु इसके अनेक लाभ, साधक को सहज ही दृष्टिगोचर होने लगते हैं। मन की शान्ति, चिन्ता और तनाव से मुक्ति, अन्तर में असीम प्रसन्नता का प्रादुर्भाव आदि कुछ मुख्य उपलब्धियाँ हैं। ध्यान में भी अत्यधिक प्रगति सहज ही होने लगती है।

अपनी शक्ति और सामर्थ्य के अनुसार प्रत्येक कर्म करते हुए व्यक्ति सहज ही व्यावहारिक और आध्यात्मिक जगत में उन्नति कर पाता है। एक आकर्षक व्यक्तित्व सहज ही उसकी संपत्ति बनता है। जिस प्रकार गुड़ पर मक्खियाँ स्वतः मंडराने लगती हैं उसी प्रकार नाम, यश और धन उसे प्राप्त होने लगते हैं। मन अन्तर्मुखी होने लगता है। व्यक्ति प्रत्येक कार्य को सफलता पूर्वक कर पाता है।

मन्त्र जप

(स्वामी शिवानंद और स्वामी सत्यानंद की शिक्षाओं से संकलित)

जप का अर्थ है किसी मंत्र या भगवान के नाम को बार–बार दुहराना। जप के अभ्यास से मन की अशुद्धियाँ दूर होती हैं। मन को निर्मल बनाने के लिए जप एक दिव्य साबुन है। जप नवीनता एवं स्फूर्ति देने वाला आध्यात्मिक स्नान है। जप से स्वास्थ्य, सम्पत्ति, बल और दीर्घ जीवन प्राप्त होता है। जप का प्रभाव केवल मन और शरीर पर न होकर मनुष्य की अन्तरात्मा के भीतर प्रवेश कर जाता है। इस कलियुग में जप सबसे अधिक सुगम, सुरक्षित और निश्चित मार्ग है, ईश्वर प्राप्ति का। जप में संख्या से अधिक भाव का महत्व है। जप किसी भी समय किया जा सकता है, परन्तु ब्रह्ममुहूर्त और रात के सोने से

पहले जप करना अति उत्तम है।

लिखित जप का मानस पर बड़ा गहरा प्रभाव पड़ता है। **जहाँ लिखित जप की कापियाँ रहती हैं, वह कमरा दिव्य शक्तियों का घर बन जाता है। – परमहंस श्री स्वामी सत्यानंद सरस्वती।** धीरे–धीरे स्वच्छ लिपि में ध्यानपूर्वक कलात्मक दृष्टिकोण से अपने इष्ट मन्त्र अथवा गुरुमंत्र को कापी में लिखना ऐसी अद्‌भुत साधना है, जिसका आवेश प्रत्यक्ष रूप से अन्तः शरीर तक पहुँच कर विषम चित्रों को मिटा देता है। जीवन में अभंग शक्ति का अवतरण होता है। भोजन के पश्चात् वज्रासन में बैठ कर भी लिखित जप किया जा सकता है। लिखित जप समय का एक ऐसा सदुपयोग है, जो जीवन को दिव्यता से परिपूर्ण कर देता है। जो समय टी.वी. देखने में, गप्पे मारने में, निरर्थक सोचने व घूमने फिरने में व्यर्थ नष्ट होता है, उसे मंत्र लेखन में प्रयोग करना चाहिए।

लिखित जप से लाभ :–

1. एकाग्रता, स्मरणशक्ति, स्थिरता, दृढ़ता, आत्मविश्वास, निर्णय लेने की क्षमता, धैर्य, साहस, मनोबल, पवित्रता, समर्पण, आस्था, भक्ति, उदारता, परमार्थ व परोपकार जैसे आध्यात्मिक गुणों का विकास।
2. मन के तनाव, द्वंद्व, कुंठा तथा उनसे उत्पन्न शारीरिक व मानसिक रोगों का निवारण।
3. जीवन का हर पक्ष नियमित और अनुशासित हो जाता है।
4. सबसे बड़ा लाभ समय के मूल्य की पहचान व उसका बेहतर उपयोग।

तो आओ, हम अपने जीवन में प्रभु नाम के खजाने को बढ़ाएँ। यह खजाना हमारा वर्तमान और भविष्य दोनों सुधार सकता है। गीता में भगवान श्री कृष्ण ने कहा है कि मृत्यु के पश्चात् व्यक्ति की आध्यात्मिक संपत्ति उसके साथ जाती है। ईश्वर प्राप्ति का मार्ग दुर्गम सही, लम्बा सही परन्तु जप से साक्षात्कार सम्भव है। पूर्ण श्रद्धा, विश्वास और भाव से किया गया जप, ईश्वर साक्षात्कार कराने का एक सुनिश्चित मार्ग है।

मन्त्र जप और संस्कार

संस्कार का अर्थ है वह कर्म ; जो धीरे–धीरे हमारी प्रकृति का एक अनिवार्य अंग बनते हुए आदत में बदल जाते हैं। हमारी चेतना (अचेतन मन) इन्हीं संस्कारों का एक अक्षय भण्डार है। जन्म जन्मान्तर के संस्कार समेट कर मृत्यु के पश्चात् आत्मा एक शरीर छोड़ कर दूसरे शरीर में प्रवेश करती है। जिस प्रकार हम पुराने जर्जरित वस्त्र का त्याग कर देते हैं; उसी प्रकार यह आत्मा पुराने शरीर का त्याग कर नए चोले को धारण करती है। **स्वामी**

<u>निरंजन ने लिखा है कि "यदि हम कहीं यात्रा पर जाते हैं, तो अपना सामान ले कर जाते हैं। उसी प्रकार आत्मा भी अपने संस्कारों की गठरी अपने साथ ही ले कर जाती है।"</u>

श्री स्वामी जी ने भी यह बात स्पष्ट रूप से समझाई है कि यही कारण है सन्तों के घर में चोर या बेईमान बच्चे का होना । इसके ठीक विपरीत कुसंग, चोरी और बेईमानी के वातावरण में से निकल कर अनेक व्यक्ति अपनी अलग छवि बनाते हैं, परोपकार और निःस्वार्थ सेवा के द्वारा। परमगुरु स्वामी शिवानंद ने जपयोग का प्रावधान बताते हुए मंत्र को एक आध्यात्मिक साबुन के रूप में जन साधारण के उत्थान के लिए प्रदान किया। गुरु प्रदत्त मंत्र में वह शक्ति है जो पुराने संचित संस्कारों को जड़ से उखाड़ने में सक्षम है।

अनेक व्यक्ति अपने मन के अनुसार जब चाहे मंत्र बदल लेते हैं। कुछ दिन गायत्री मंत्र किया, फिर उससे मन ऊब गया तो भगवान शिव का मंत्र जप करने लगते हैं। **परमहंस स्वामी सत्यानंद जी ने लिखा है कि "प्रत्येक व्यक्ति का आंतरिक ढाँचा भिन्न होता है।"** गुरु जानता है की तंरगों से संस्कारों का विस्फोट और विघटन हो सकता है। मंत्र में वह शक्ति है जो धीरे–धीरे इन पुराने कर्मों द्वारा निर्मित संस्कारों का क्षय कर सकती है। इस जन्म में हमारे अनेक निर्णय इन्हीं संस्कारों के द्वारा प्रभावित होते हैं। मन की विक्षिप्त अवस्था भी इन्हीं दबे हुए संस्कारों का परिणाम हो सकती है। अनेक साधकों के अनुभव से यह सत्य प्रमाणित हो चुका है कि चेतना के विस्फोट से उन्होंने जब अपने उन दबे हुए संस्कारों का प्रत्यक्ष दर्शन किया तो वह एक नई ऊर्जा और स्फूर्ति से भर उठे। उनकी बीमारी और मानसिक विक्षिप्तता भी एकदम जादू की तरह ठीक हो गई।

योगविद्या में पढ़ा हुआ एक अनुभव मैं यहाँ पाठकों के लिए लिख रही हूँ। कुछ वर्ष पूर्व मुंगेर आश्रम में एक स्त्री जो भंयकर सिर दर्द से पीड़ित थी, इलाज के लिए आई। श्री स्वामी जी ने उसको अकेला छोड़ देने का निर्देश दिया। दर्द के अतिरेक से वह कई बार खूब चिल्लाती भी थी। आश्रमवासी उस के व्यवहार को देखकर एक गहन करुणा से भरते हुए, श्री स्वामी जी के निर्देश पर शंका भी करते थे। परन्तु गुरु अवज्ञा का साहस नहीं कर पाते थे। कुछ समय पश्चात् अचानक उसकी चेतना में एक विस्फोट हुआ और उसका सिर दर्द एकदम गायब हो गया। जब उससे पूछा गया तो उसने कहा, "एक दिन मैं अपने पिछले जन्म में चली गई। मैंने देखा कि एक कारखाने में एक दुर्घटना में मैं निचली मंजिल पर खड़ी हूँ और छत और बहुत सारी मशीनें मेरे ऊपर गिर रही है। उसी के फलस्वरूप मेरी मृत्यु हो गई।"

साधना के सोपान

आज के युग में सर्वत्र अशान्ति और अराजकता का साम्राज्य है। तरह–तरह की लुभावनी साधनाएँ एक व्यक्ति को शंका के एक किनारे से दूसरे किनारे तक झुलाती रहती हैं। अधर्म जितना फैल रहा है, धर्म का व्यापार उतना ही दिन दूनी रात चौगुनी प्रगति कर रहा है। शान्ति की खोज में मनुष्य एक प्रवक्ता से दूसरे वक्ता, एक संत से दूसरे संत के पास भटक रहा है। कौन सही है, कौन गलत, यह पहचान मनुष्य कैसे करे? परिणामतः व्यक्ति थककर चाहते हुए भी किसी एक साधना पर स्थिर नहीं रह पाता है और अन्ततः मृत्यु का आगमन होने पर इस प्यास को अधूरा रखते हुए परलोक सिधार जाता है। इस दिव्य पथ का अनुगामी अंतहीन प्रसन्नता, आनंद और शान्ति का अनुभव कर सकने में समर्थ है। इस धरती पर ही स्वयं के लिए स्वर्ग बनाकर दूसरों का मार्गदर्शन भी अपने चरित्र के द्वारा कर सकता है। व्यक्ति के लिए आवश्यक है कि सर्वप्रथम स्वयं को पहचाने, स्वयं से संबंध स्थापित करे।

आत्म –निरीक्षण की साधना सर्वप्रथम आवश्यक है। ईश्वर के इस उद्यान में रंग–बिरंगे पुष्प हैं। हर पुष्प का सौंदर्य और गुण अद्वितीय है। जीवन में सबकी अपनी उपयोगिता है। मानव, कीट–पतंग, आदि भी किसी न किसी प्रयोजन के लिए प्रभु द्वारा रचित हैं। इनमें मानव सबसे अधिक बुद्धिमान है। परंतु कितने दुर्भाग्य की बात है कि अनेक मानव इस दिव्य पथ पर बढ़ना तो दूर, एक कदम भी नहीं रख पाते। संसार में रहते हुए अनेक प्रकार के रोग, दुःख, चिंताएँ और तनाव ही उनका भाग्य बन जाते हैं। अनेक व्यक्तियों को यह ज्ञात ही नहीं है कि रोग, दुख, चिंताएँ आदि स्वरचित हैं। इस ऊहापोह से वे सरलतापूर्वक मुक्ति प्राप्त कर सकते हैं। हर धर्म में व्यक्ति के उत्थान को ही महत्व दिया गया है। एक नेक, सच्चा मनुष्य ही सबको शीघ्र ही अपना मित्र बनाने में सफल होता है। आत्मनिरीक्षण की साधना में हम अपने दैनिक कार्यकलापों का निरीक्षण नियमित रूप से करते हैं, तब शनैः शनैः हम अपने व्यक्तित्व से परिचित होना आरंभ करते हैं। कहाँ हमारी त्रुटि हुई ? कहाँ हम अत्यधिक प्रसन्न या दुःखी हैं ? जो व्यवहार हमें करना चाहिए था, क्या हमने किया ? जब धैर्य और लगन से आत्मनिरीक्षण किया जाता है, तब हम धीरे–धीरे अवगुणों का निराकरण करने में सफल हो पाते हैं। दुर्गुण धीरे–धीरे कम होने लगते हैं और हम विभिन्न सद्गुणों को अपने व्यवहार, व्यक्तित्व में प्रस्थापित करने में समर्थ होते हैं। यही सद्गुण और सद्वृत्तियाँ आध्यात्मिक मार्ग पर हमें पहला कदम रखने में मदद करती हैं। जैसे–जैसे अपने स्वार्थ से उठकर हम निःस्वार्थ भाव का अपने जीवन में प्रत्यारोपण करते हैं, हम असीम सुख और प्रसन्नता का अनुभव करने लगते हैं। स्वामी शिवानंद ने स्वयं के

उत्थान पर बहुत अधिक बल दिया है। अगर नियमित जप, ध्यान के अभ्यास से आपके व्यवहार और व्यक्तित्व में सद्‌गुणों की वृद्धि हो रही है, तभी आपकी साधना सफल हो रही है। डायरी लिखना आत्मनिरीक्षण की साधना का एक महत्पूर्ण अंग है। डायरी का महत्व एक गुरु के समान है। डायरी में अपने द्वारा किए गए अच्छे–बुरे कार्यो का वृतान्त प्रतिदिन लिखना चाहिए। आज मैंने कौन सा अच्छा काम किया ? आज मैंने कितनी बार क्रोध किया? आज मैं कितने बजे सोकर उठा ? क्या सेवा करते हुए मैं निष्काम रह पाया ? आज मैं दुःखी या चिंताग्रस्त हुआ या खुश रहा ? अगर दिन का बड़ा भाग प्रसन्नता से व्यतीत करते हैं, तो इसका स्पष्ट अर्थ है कि सत्व गुण आपके व्यक्तित्व में धीरे–धीरे बढ़ रहे हैं। सद्‌गुणों का अर्जन प्रत्येक व्यक्ति करना चाहता है। परंतु अधिकतर साधक केवल हवाई किले बनाते हुए स्वयं को मिथ्या भ्रम में ही रखते हैं। अनैतिकता की नीव पर रखी गई साधना, जप शीघ्र ही धाराशायी हो जाते हैं। यदि भवन का निर्माण एक कमजोर नीव पर किया जाता है तो वह वायु का एक तेज झोंका भी नहीं सह पाता। इसी प्रकार ऐसे साधक थोड़ा सा भी अपमान नहीं सह सकते। क्रोध का आवेग उनके पतन का कारण बन जाता है। कभी–कभी एक समर्थ गुरु के न रहने से साधक निराशा के गहरे अंधकार में डूब जाता है। अपने व्यक्तित्व के उत्थान करने की तीव्र इच्छा भी उसकी मदद नहीं कर पाती और अधिकतर साधक मानसिक तनाव, चिंता, दुःख आदि के भीषण भँवर में फँस जाते हैं। तब साधना को छोड़ देना ही उनके लिए एक विकल्प रह जाता है।

कुछ भाग्यशाली साधक ही सद्‌गुरु को पहचान पाते हैं। आज के युग में सद्‌गुरु का मिलना अनेकों के लिए एक मृगतृष्णा ही रह जाती है। जीवन के इस तपते मरुस्थल में पानी की एक बूँद के लिए भी साधक तरस जाता है। उठो साधकों ! निराश होना तुम्हारा भाग्य नहीं है। साधना की तीव्र इच्छा इस बात की परिचायक है कि प्रभु की आप पर अपरंपार कृपा है। प्रभु ने ही आपको अपने लिए चुना है। अतः नियमित जप का अभ्यास करते हुए निष्काम सेवा को जीवन का अंग बनाओ। निष्काम सेवासे नम्रता का अर्जन होता है। **'नम्रता ही सारे सद्‌गुणों का मूल है।' – स्वामी शिवानंद**

चाहे आप किसी भी धर्म के अनुयायी हैं, सद्‌गुणों का अर्जन आपका प्रथम लक्ष्य होना चाहिए। जैसे–जैसे दुर्गुणों के स्थान पर सद्‌गुण स्थापित होते हैं, हमारा व्यक्तित्व दर्पण की भाँति निखरने लगता है। निःस्वार्थ भाव बढ़ने लगता है। परोपकार में असीम सुख का अनुभव होने लगता है। यही सुख चिरस्थायी आनंद का मार्ग प्रशस्त करता है। आनंद और केवल आनंद ! सुख और केवल सुख ! क्या यही मानव जीवन का अंतिम उद्देश्य नहीं ? प्रभु की असीम अनुकम्पा से साधक प्रभु के अनंत भंडार की एक बूंद भी यदि चख पाता है, तो वह स्वयं आश्चर्यचकित रह जाता है। उस अमृत के समक्ष भला विष कौन पीना चाहेगा।

'यह तन विष की बेल है, गुरु अमृत की खान। शीश कटाए गुरु मिले, तो भी सस्ता जान।।'– संत कबीर

ब्रह्ममुहूर्त और साधना

मानव जीवन प्रभु की अद्वितीयकृति है। चौरासी लाख योनियों के चक्र समाप्त होने पर ही मानव जीवन प्राप्त होता है, और मानव जीवन में ईश्वर के विशेष कृपा पात्र ही उसकी भक्ति का चयन कर पाते हैं। संसार अनित्य है, चारों ओर केवल दुःख का अथाह सागर है। यह दुर्लभ मानव शरीर इस दुःख और चिन्ता के सागर में डूबते उतरते ही व्यर्थ चला जाता है। **"जब मनुष्य के कर्मों के भोग समाप्त होते हैं तभी वह ईश्वर आराधना के दिव्य पथ के महत्व को समझते हुए इसका अनुगामी बनने का सौभाग्य प्राप्त करता है।" –स्वामी सत्यानंद**

संसार में रहकर केवल देह को ही नित्य और सत्य समझकर सारा समय इस नश्वर देह को सजाने संवारने, भोग–भोगने में ही व्यर्थ नष्ट हो जाता है। केवल और केवल ईश्वर की असीम अनुकम्पा ही जीव को परमार्थ, भक्ति और साधना के दिव्य पथ का पथिक बनाने में समर्थ है। संसार में रहकर मन को प्रशिक्षित करते हुए, अपने प्रत्येक कर्तव्य को पूर्णतया पालन करते हुए, प्रत्येक मानव इस जीवन के अंतिम लक्ष्य ब्रह्मसाक्षात्कार को प्राप्त कर सकता है। आवश्यकता है केवल सतत् अनथक पुरुषार्थ की। प्रभु की कृपा से यह दिव्य पथ स्वतः सरल बनता जाता है।

प्रत्येक संत ने साधना में ब्रह्ममुहूर्त को अत्यधिक महत्वपूर्ण बताया है। ब्रह्ममुहूर्त का अर्थ है सुबह 4.00 बजे से 6.00 बजे तक का समय। **स्वामी शिवानंद ने यह समय साधना के लिए सर्वाधिक उपयुक्त बताते हुए लिखा है कि सुबह वातावरण में अद्वितीय, अप्रत्यक्ष देवताओं, साधुओं की संवेदनाओं को अनुभव किया जा सकता है।** उत्तर की तरफ मुँह करके बैठने से हिमालय से आने वाली संवेदनाएँ (तपस्वी, ऋषि मुनियों की) स्वतः अनुभव होने लगती हैं। सुबह मन एकदम शान्त होता है, शरीर भी विश्राम के पश्चात् फुर्तीला रहता है। एक बार यदि हिम्मत से बिस्तर छोड़कर मुंह, हाथ धो लिए जाएँ तो इस समय अत्यंत सरलतापूर्वक साधना में आश्चर्यजनक प्रगति हो सकती है। यदि स्वास्थ्य अनुमति दे तो स्नान के पश्चात् थोड़ा आसन, प्रणायाम, करके ध्यान में बैठने से मन सरलता से शान्त हो जाता है।

स्वामी निरंजनानंद सरस्वती ने ताड़ासन, त्रियकताड़ासन और कटिचक्रासन को पूर्ण शरीर में ऊर्जा के प्रवाह के लिए अत्यधिक प्रभावशाली बताया है। उन्होंने लिखा है कि ये तीन आसन करने के पश्चात् कपालभाती,

नाड़ीशोधन और भ्रामरी प्राणायम करने से ध्यान सुगमतापूर्वक किया जा सकता है। सर्वाधिक समस्या सुबह आलस्य की रहती है। ध्यान में बैठने के पश्चात् भी धीरे–धीरे तन्द्रा, नींद साधक को घेर लेती है कई साधक पुनः सो जाते हैं। स्वामी शिवानंद ने सूर्यनमस्कार को आलस्य भगाने के लिए अत्यधिक प्रभावशाली बताया है। यदि साधक को आलस्य और नींद बार–बार परेशान करने लगे तो उसे शीघ्रता से दो चक्र सूर्य नमस्कार कर लेना चाहिए। **स्वामी शिवानंद ने खुली हवा में सैर करने, सर्वांग आसन को भी प्रभाव शाली बताया है।** शशांकासन, प्रणामासन में गायत्री मंत्र का जप करने से भी नींद स्वतः भाग जाती है।

अत्यधिक चंचल मन को शान्त करने के लिए प्राणायाम एक शिक्षक की छड़ी का काम करता है। **स्वामी सत्यानंद ने अपनी पुस्तक 'योग प्रदीप–5' में लिखा है कि गायत्री मंत्र के साथ नाड़ीशोधन प्राणायाम करने से मन अतिशीघ्र शान्त हो जाता है।** साधक अपना कोई भी मंत्र प्राणायाम में मानसिक रूप से जोड़ सकता है। मंत्र के साथ प्राणायाम न केवल शरीर शुद्धि करता है अपितु अत्यधिक शक्तिशाली बन जाता है। आरंभ में साधक को सुबह जल्दी उठने में अनेक समस्याओं का सामना करना पड़ सकता है परन्तु धीरे–धीरे ईश्वर कृपा से जब मन शुद्ध होने लगता है तब स्वतः ही साधक इस बह्ममुहूर्त के लाभ को समझते हुए, अनुभव करते हुए इसे अपनाने के लिए प्रेरित होता है। अपनी दिनचर्या में थोड़ा सा परिवर्तन साधक की नींद को कम कर देता है। रात का भोजन हल्का लेना चाहिए। सोने से चार घण्टे पहले लिया गया भोजन शरीर के स्वास्थ्य के लिए अत्यधिक उत्तम है। फल, दूध और हल्का सुपाच्य, सात्विक भोजन, रात्रि में जल्दी सोना आदि ब्रह्ममुहूर्त का लाभ उठाने में साधक की अत्यधिक सहायता करते हैं।

आवश्यकता है अपने आत्मबल को जगाने की । आरंभ में थोड़ा सा पुरुषार्थ करना, स्वतः ही साधक का पथ प्रशस्त करता है। इस जन्म में ही ईश्वर प्राप्ति का लक्ष्य रखते हुए साधक न केवल स्वयं प्रेरित होता है अपितु अनेक निम्न आत्माओं के उत्थान में सहायता करता है। पल–पल ईश्वर की दिव्य कृपा, आनंद को अपने रोम–रोम में अनुभव करते हुए, आओ हम सब नित्य प्रतिदिन इस दिव्य अमृत को चखने के योग्य बनें। अपना जीवन उन्नत करते हुए, अपने परम पिता प्रभु के योग्य बच्चे बनें। जैसे योग्य बालक पर माता–पिता को गर्व होता है उसी प्रकार हमारा परम पिता परमात्मा हम पर गर्व करे। हमारा जन्म, ईश्वर के द्वारा इस कृपा के लिए चयन अवश्य ही किसी प्रयोजन से किया गया है। इस सत्य की पूर्णता को, यथार्थता को आत्मसात करने का प्रयास करें। देवता भी मानव जन्म के लिए लालायित रहते हैं क्योंकि इसी रूप में प्रभु की अत्यधिक अनुकम्पा सहज ही प्राप्त होती है। एक–एक पल महत्वपूर्ण है, अमूल्य है। **स्वामी सत्यानंद ने कहा है कि "हमारा जीवन केवल एक सांस का है।"** उस एक साँस में प्रभु नाम सिमरन करते हुए उस पल को, उस साँस को सार्थक बनाएँ। जीवन की क्षणभंगुरता के प्रति अत्यधिक सजग रहते हुए, इस दिव्य पथ पर उस आनंद और अमृत को चखें, पियें जिस पर हमारा पैतृक अधिकार है।

संकीर्तन – एक सम्पूर्ण साधना

परम गुरु शिवानंद ने आज से 80 वर्ष पहले योग को अत्यधिक सरल और सुगम बनाने के लिए कई नूतन साधनाएँ प्रदान की। कीर्तन को उन्होंने प्रभु नाम स्मरण की एक अत्यंत आनंददायक और सरल विधि बताते हुए, कीर्तन को साधना के रूप में अपनाने के लिए प्रेरित किया। उन्होंने अपने सब प्रवचनों में कीर्तन को मुख्य स्थान दिया। उन्हें **'कीर्तन सम्राट'** कहा जाता था। उन पर लिखी पुस्तकों से मुझे यह समझ आया कि जब वह कीर्तन कराते थे तो लाखों लोग अपनी सुध बुध खो कर कीर्तन की धुन पर अनेक घण्टों तक नाचते रहते थे। ऐसा था उनके कीर्तन का जादू!

आज कलियुग में चारों ओर तनाव, भय , विषाद और चिन्ता का साम्राज्य है। जो मन भगवद् नाम स्मरण के द्वारा आनन्द की असीम गंगा में आत्मा को डुबो सकता था, आज ! दुःख, निराशा और रोगों के गहरे सागर में व्यक्ति को गोते लगवा रहा है। एक कठपुतली की भाँति मानव इस निम्न मन के चंगुल में फँस कर, दुःख और सुख के झूले में झूल रहा है। अनेकों मनोरंजन के साधन उपलब्ध होते हुए भी रोगों की संख्या में निरन्तर वृद्धि हो रही है। क्यों ? **परम गुरु स्वामी शिवानंद जो कि एक भविष्य द्रष्टा थे, उन्होंने कीर्तन की इस सरल और आनंददायक विधि को जन–जन तक पहुँचाने का अनथक प्रयास किया !** वह जहाँ भी जाते थे कीर्तन प्रारम्भ कर देते थे। रोगियों के लिए उन्होंने महा मृत्युंजय मत्र का जप कीर्तन के रूप में अत्यधिक लाभप्रद बताया। महामन्त्र (हरे राम हरे राम, राम राम हरे हरे, हरे कृष्ण हरे कृष्ण, कृष्ण कृष्ण हरे हरे।) को भी उन्होंने अत्यधिक प्रभावशाली बताया रोगों के निवारण के लिए।

कीर्तन आनंददायक होने के साथ–साथ अत्यधिक प्रभावशाली है। मल, विक्षेप और आवरण तीनों दोषों को सरलता से कीर्तन के अभ्यास से दूर किया जा सकता है।

"कीर्तन से भाव समाधि सहज ही संभव है। –स्वामी शिवानंद

कीर्तन का कोई निश्चित समय नहीं है। प्रत्येक समय अर्थात् नहाने से पहले या खाना पकाते हुए कीर्तन किया जा सकता है। जब मन बहुत व्यथित हो या चंचल हो, तो कीर्तन एक रामबाण औषधि का काम करता है। तो आओ हम सब अपने जीवन में कीर्तन रूपी इस अमृत का पान करें। रोज सायं काल को अपने मित्रों व परिवार के साथ संकीर्तन

करें और एक दिव्य जीवन का शुभारम्भ करें।

साधना और अहंकार

आध्यात्मिक प्रगति के मार्ग पर कदम बढ़ाते हुए अनेक साधक अहंकार के चंगुल में इतनी बुरी तरह फँसे रहते हैं कि साधना का भी अधिक लाभ नहीं उठा पाते। गुरु द्वारा प्रदान की गई साधना, यदि साधक खूब मन लगा कर पूर्ण विश्वास के साथ करता है तो अतिशय लाभ प्राप्त होते हैं । नियमितता और लगन साधक की एक ऐसी सम्पत्ति है जो उसकी प्रगति का मार्ग द्रुत गति से प्रशस्त करने में सक्षम है। साधना के इस मार्ग पर चलते–चलते अनेक प्रकार के दिव्य अनुभव उसकी चेतना को एक नए आयाम तक पहुचाते हैं। अनुभवों की पूँजी को अपने दिल की तिजोरी में रखते हुए, प्रत्येक साधक बार – बार उनके आनंद में खो जाता है।

यहीं से प्रारम्भ होता है साधक के पतन का मार्ग ! यदि साधक नया है तो अपने अनुभवों को अपनी साधना का प्रतिफल मानता है। ऐसे में उसका "मैं" यानि अहंकार पोषित होता है। दिन रात साधक उन्हीं अनुभवों में खाता, पीता और सोता है। साधना की प्रगति एक हद तक साधक के प्रयत्न पर निर्भर अवश्य है; **परन्तु ईश्वर कृपा, गुरु कृपा के बिना प्रगति नितान्त असम्भव है।** यदि साधक स्वयं को यह सरल शिक्षा बार–बार याद दिलाता है तो उसका अहंकार स्वतः ही निर्बल होने लगता है। **परमहंस स्वामी निरंजानन्द सरस्वती ने लिखा है कि एक साधक को इस अहंकार से बचना चाहिए। जो भी अनुभव आता है उसे एक द्रष्टा भाव से देखते हुए, पूरा ध्यान अपनी साधना पर केन्द्रित रखना चाहिए।**

स्वामी जी की यह शिक्षा कितनी कठिन है, प्रत्येक नया साधक भली भाँति समझेगा। वह मन, जो सदा राग और द्वेष के झूले में झूलता रहता है द्रष्टा बनने को तैयार नहीं होता। कुछ भी अच्छा अनुभव आने से उससे सहज ही राग हो जाता है। और जिस दिन कोई अनुभव नहीं आता, मन व्यथित रहते हुए द्वेष के सागर में गोते लगाता रहता है। यही तो राजसिक गुण है। मन प्रतिकूल को अनुकूल बनाने की दुविधा में ही जुड़ा रहता है। अब ऐसे मन में शान्ति कहाँ ? नाम स्मरण कहाँ ? साधना तो केवल नाम की ही रह जाती है।

स्वामी जी की यह शिक्षा कठिन सही परन्तु इसका अत्यधिक लाभ साधक को असीम शान्ति के रूप में प्राप्त होता है। यह मैंने अनुभव से ही समझा। स्वामी जी की कृपा से मैं द्रष्टा बनने की साधना को निरन्तर कर रही हूँ और मुझे यह लिखते हुए अत्यधिक प्रसन्नता का अनुभव हो रहा है कि नित प्रतिदिन मेरा मन शान्त होता जा रहा है। यद्यपि प्रगति बहुत ही धीमी है, परन्तु प्रत्येक कदम मुझे एक नए आनन्द और उल्लास से भरते हुए

प्रेरित कर रहा है। गुरु जी की कृपा से अब लगभग दो वर्ष के पश्चात् मैं इस शिक्षा की गहराई का तात्पर्य समझ पा रही हूँ। मंजिल दूर ही सही, परन्त ऐसे समर्थ गुरु का संग; मार्ग का पहला कदम मेरे तन, मन, और आत्मा को एक ऐसी फुहार से भिगो दे रहा है, जिसका वर्णन करने में मेरी लेखनी असमर्थ है। अतः मेरा सब साधकों से अनुरोध है कि स्वामी जी की इस शिक्षा का मनन, चिन्तन करते हुए इस को अपने जीवन का अंग बनाएँ और स्वयं अपने अनुभव से प्रेरणा प्राप्त करते हुए कदम आगे बढ़ाएँ।

दूरदर्शन – योग साधना में बाधा का मुख्य कारण

आज प्रत्येक व्यक्ति ध्यान करना चाहता है। योग साधना करना चाहता हैं अखबारों, पत्रिकाओं में अनेकों बार ध्यान के लाभों के बारे में लेख दिन प्रतिदिन छपते ही रहते हैं। विभिन्न प्रकार के ध्यान के सी.डी., वी.सी.डी. ओर कैसेट बाजार में बहुतायत में उपलब्ध है। आज यह एक व्यापार का साधन भी बन गया है।

अनेक संतों ने भी ध्यान को जीवन में प्रसन्नता लाने के लिए अत्यधिक महत्वपूर्ण बताया है। **"ध्यान बिना सुख कहाँ ?" –परम गुरु स्वामी शिवानंद** । मैं एक पत्रिका अखण्ड ज्योति की आजीवन सदस्य हूँ। उसमें मैंने बहुत साल पहले पढ़ा था कि **20 मिनट का ध्यान 7 घण्टे की नींद के बराबर होता है।** यह वाक्य पढ़ कर मैं आश्चर्यचकित हो उठी थी। तब एक दृढ़ संकल्प के साथ मैंने ध्यान करने का प्रयास आरम्भ किया। पर क्या जानती थी कि ध्यान इतना मुश्किल होगा ! एक आसन में बैठते ही मन तो एक चंचल बंदर की तरह पूरी दुनिया घूमने लगता है। वर्तमान और भूतकाल की अनेकों घटनाएँ सहज ही मन के सतह पर ऊपर आ जाती हैं। कई बार मन शान्त होने के बजाय और अधिक व्यथित हो जाता है।

ज्ञानदर्शन योगाश्रम में मुझे **परमहंस श्री स्वामी सत्यानंद सरस्वती की पुस्तक "योग साधना" पढ़ने के लिए मिली।** इस पुस्तक के एक दीक्षा पत्र में मैंने पढ़ा कि **"चलचित्र देखने से दिमाग की नसें कमजोर हो जाती हैं।"** यद्यपि मुझे तुरन्त समझ आ गया कि दिन में 1–2 घंटे दूरदर्शन के सामने बिताना, दिमाग की नसें कमजोर करना ही है; फिर भी मैं स्वयं को दूरदर्शन से दूर न कर सकी। परन्तु इस शिक्षा की जड़ें जैसे–जैसे दिमाग में गहरी होने लगीं, मैने टी.वी. देखना कम कर दिया। सीरियल तो बहुत कम ही देखने लगी, केवल आस्था और संस्कार जैसे धार्मिक चैनल ही देखने लगी। परन्तु उनमें आए हुए विज्ञापन सहज ही ध्यान के समय मानसपटल पर उभरते रहते और नितनूतन इच्छाओं को जन्म देते। विभिन्न प्रोग्रामों के समय के कारण भी अनेकों बार मन में तनाव बना रहता। खासकर जब घर का कोई काम निकल आता अथवा घर में कोई मेहमान

आ जाता, तो मन ही मन मैं बहुत चिढ़ जाती।

अनचाहे, अनायास ही क्रोध मन में पनपता रहता। अगर प्रोग्राम छूट जाता तो एक तरह का दुःख भी मन में बना रहता। क्रोध, तनाव और नकारात्मकता के साथ ध्यान तो बहुत दूर की बात, मन किसी भी तरह एकाग्र नहीं हो पाता था। आज अधिकांश वृद्ध भी पढ़ने की बजाय टी.वी पर ही रामायण, गीता आदि देख कर लाभ उठाना चाहते हैं। परन्तु पुस्तकों से पढ़ना, दूरदर्शन पर देखने से कहीं ज्यादा अधिक शक्तिशाली और लाभकारी है। श्रवण करना एक सशक्त माध्यम है मन एकाग्र करने का। परन्तु दूरदर्शन छोड़ने के पश्चात् ही मुझे यह आभास हुआ कि बचे हुए समय का मैं कितनी अच्छी तरह सदुपयोग कर पाती हूँ। पुस्तकों को तो किसी भी समय पढ़ा जा सकता है। अतः क्रोध और तनाव का निराकरण सहज ही हो गया है। पुस्तकों से एक ही विचार को बार–बार पढ़ कर मनन और चिन्तन भी सहज ही किया जा सकता है। दूरदर्शन के कार्यक्रम पर हमारा कोई नियन्त्रण नहीं होता, अतः उसको दोहराना संभव नहीं होता।

जो व्यक्ति संजीदगी से ध्यान के इस दुर्गम पथ पर चलना चाहते हैं उनको स्वयं के लिए विचार करते हुए, अपनी मानसिकता को समझते हुए कुछ और विकल्प ढूँढने ही होंगे। एकान्त में आँख बन्द करके बैठने से ध्यान कदापि सम्भव नहीं है। मन के प्रशिक्षण के लिए अति आवश्यक है कि मन को स्वाध्याय और संकीर्तन का स्वस्थ भोजन दिया जाए न कि विज्ञापनों का। एक प्रशिक्षित मन ही एकाग्र हो पाता है, फिर ध्यान का मार्ग तो स्वतः ही प्रशस्त हो जाता है। एक प्रशिक्षित मन के द्वारा हजारों की भीड़ में भी सरलता से ध्यान किया जा सकता है।

परीक्षा साधना का महत्वपूर्ण अंग

साधना के दुर्गम पथ पर चलते–चलते कई बार साधक बहुत थक जाता है, निराश भी हो जाता है। धैर्य उसका साथ छोड़ने लगता है और ऐसे समय में कठिन परीक्षा उसका मनोबल और भी गिरा देती है। अपनी प्रगति साधक को स्वतः समझ नहीं आती और अगर गुरुदेव निर्देश देने के लिए न हों तो स्थिति और भी जटिल हो जाती है। निराशा साधक को चारों ओर से घेर लेती है। ऐसे में साधक बेचारा ! बहुत बार परिस्थितियों की विषमता से घबराकर बहुत से साधक इस पथ को न चाहते हुए भी छोड़ने पर विवश हो जाते हैं। गुरु की उपस्थिति और उनका कुशल निर्देशन साधना की प्रथम आवश्यकता है, इसके अभाव में प्रगति असंभव है। दूसरी योग्यता जो साधना के लिए आवश्यक है, वह है धैर्य और लगन। स्वयं में विश्वास, गुरु पर विश्वास और ईश्वर की कृपा पर विश्वास ही साधना को प्रगति के मार्ग पर आगे बढ़ा सकता है। कभी–कभी साधक गुरु के द्वारा दी गई सरल

साधना को महत्व न देकर मुश्किल साधना करना चाहता है। ऐसे शिष्यों को **स्वामी निरंजानानंद सरस्वती ने 'मनमुखी चेले' कहा है।** अगर उनका मन किसी साधना में कुछ समय तक नहीं रमता, तो वे बेझिझक उसे या तो बदल देते हैं या छोड़ देते हैं। प्रभु के दर्शन करने के लिए एक साफ–सुथरा मजबूत व्यक्तित्व ही सफल हो पाता है। अपावन में पावन का अवतरण कैसे होगा? जैसे एक पात्र जिसमें पहले से ही गोबर भरा है, खीर डालने पर भी उसे खा नहीं सकते। उसी तरह जन्म–जन्म की गंदगी, मलिनता से भरा यह मन कैसे अच्छी वस्तु को संभाल पाएगा ? प्रभु की कृपा होने पर यह काफी हद तक सरल होता है। फिर भी अपने आंतरिक व्यक्तित्व का निखार और सफाई तो साधक को स्वयं ही करनी पड़ती है। और यहीं से आरंभ होती है परीक्षा। परीक्षा जीवन के हर क्षेत्र में ऊपर उठाने का काम करती है। जब मुश्किल परिस्थिति आती है, तभी मनुष्य अपने आप का निरीक्षण करता है। अपनी गल्तियों को ढूँढने का प्रयास करता है और धीरे–धीरे अभ्यास और धैर्य से उनका निराकरण करने में सक्षम होता है । साहस, लगन, और धैर्य के बिना एक कदम भी आगे बढ़ना संभव नहीं होता। प्रारब्ध के संस्कार, वंशानुगत संस्कार और बुरी वृत्तियाँ बार–बार साधक के ऊपर हावी हो जाती हैं और सजग, सतर्क रहे बिना उनको दूर करना लगभग असंभव सा कार्य है।

परमगुरु स्वामी शिवानंद ने इस ऊहापोह से निकलने और आत्मशुद्धि का एक बहुत ही सरल तरीका बताया है –'सेवा' । उनके अनुसार सेवा आत्मभाव से की जाए, तो जन्मों के संस्कार धीरे–धीरे खत्म होने लगते हैं। आत्म भाव का अर्थ है सबको अपने जैसा समझना अर्थात् सबको प्यार करना। **"सेवा और प्यार"** यही पहली साधना है। जब पूरे भाव के साथ सेवा की जाती है तो हर एक कार्य आत्म शुद्धि में सहायक होता है और व्यक्ति साधना के पथ पर शीघ्रता से आगे बढ़ पाता है। सेवा के लिए साधक को हमेशा उत्सुक रहना चाहिए और अवसर मिलते ही उसका लाभ उठाना चाहिए। लम्बी–लम्बी पूजा, स्रोत–पाठ और माला से सेवा का महत्व बहुत अधिक है। जप और पूजा अगर बिना बाह्य आडम्बर के की जाए, तो साधक अपनी गल्तियाँ ढूँढने और उन्हें सुधारने में सक्षम हो पाता है। सेवा करना बहुत हिम्मत वाले साधकों के लिए ही संभव है। अपना अहंकार गलाकर, कई बार बहुत तिरस्कार और अपमान सहन करना पड़ता है। परंतु **अपमान और तिरस्कार को सहन करना स्वामी शिवांनद ने 'सबसे ऊँची साधना' कहा है।** इस साधना का अभ्यास करने से धीरे–धीरे क्रोध, ईर्ष्या आदि दुर्गुण स्वतः ही धूमिल होने लगते हैं। ईश्वर की सत्ता में हर परिस्थिति पल–पल बदलती है। सब कुछ अनित्य है। आज जो हमारे लिए सबसे बड़ा दुःख है, कल वह बदल जाता है। मन हर पल नए–नए विकल्पों से

स्वयं को व्यस्त रखते हुए साधक को भ्रम में डालता है। ऐसे में परीक्षा का आगमन साधक को अपनी वास्तविक प्रगति का परिचय देते हुए उसे आगे बढ़ने के लिए प्रेरित करता है। सतत् प्रयास, सतत् सुधार बिना थके, बिना निराश हुए साधक को अनन्त की करुणामयी गोद के लिए तैयार करता है। जैसे–जैसे साधक आगे बढ़ता है, अनन्त प्रसन्नता, आनंद का उसे अनुभव होता है। प्रभु की दिव्य शक्तियाँ समझ में आने लगती हैं और वह अपने पुराने कष्ट बिल्कुल भूल जाता है। जैसे बालक के जन्म के बाद स्त्री गर्भकाल के अपने दुःख तकलीफ भूलकर नवजात शिशु के लालन पालन में स्वयं को भी भुला देती है। एक माँ की असीम ममता और प्यार स्वतः ही उसके नए जीवन का अंग बन जाते हैं। ऐसे ही योग का सहारा लेते हुए साधक जब प्रगति की एक सीढ़ी पर चढ़ता है, तो उसका मन, आत्मा सब दिव्य आनंद से सराबोर हो जाता है। यही आनंद एक मार्गदर्शक बनकर उसे लक्ष्य तक ले जाता है।

साधकों ! उठो ! देर मत करो ! दिव्य पथ पर धीरे–धीरे बढ़ते हुए दिव्य जीवन जीने की कला सीखो। प्रभु दोनों हाथ फैलाकर तुम्हारी प्रतीक्षा कर रहे हैं। डरो मत, घबराओ मत, सब कुछ परमपिता परमेश्वर की लीला समझकर स्वीकार करो और पल –पल ईश्वर को धन्यवाद दो कि उसने तुम्हें दिव्य पथ का अनुगामी बनने के लिए चुना है।

एक कमजोर मन

योग के द्वारा एक कमजोर मन को शक्तिशाली बनाया जा सकता है। एक कमजोर मन का अर्थ है सुख और दुःख दोनों में अपना संतुलन खो बैठना। एक कमजोर मन में ही इच्छाएँ पूरी न होने पर क्रोध का प्रादुर्भाव होता है। जो समस्त दुर्गुणों की जड़ है। **गोस्वामी तुलसीदास ने काम, क्रोध, और लोभ को नरक के पंथ बताया है।** आज मानव इच्छाएँ पूरी न होने के कारण क्रोध के चंगुल में फँसता है। अनावश्यक संग्रह तो एक प्रकार का लोभ ही है। भविष्य में अनिष्ट की आंशका से सर्वदा ग्रस्त रहते हुए मानव संग्रह वृत्ति का चाह कर भी त्याग नहीं कर पाता। वर्तमान जीवन में सतत अशांति, चिन्ता और तनाव ने अधिकांश मानवों को रोगी बना दिया है। कोई मन से रोगी तो कोई तन से रोगी। दुःख और तनाव में जीना नरक नहीं तो और क्या है ? आज की भागदौड़ वाली जिन्दगी में सन्तोष तो मानो कहीं खो ही गया है। किसे फुर्सत है एक दूसरे का दुःख दर्द बाँटने की ? रिश्तेदारी और मित्रता भी केवल नाम मात्र की ही रह गई हैं। ऐसे में संवेदनशीलता का पूर्ण अभाव है। स्वार्थ के इस वातावरण में चिराग लेकर ढूँढने से ही परमार्थ मिलता है। और जहाँ परमार्थ मिलता है वहाँ भी इन्सान निश्चिंत नहीं हो पाता है, कहीं न कहीं मन में डर बना ही रहता है कि सामने वाले का कोई स्वार्थ तो नहीं ? योग के द्वारा व्यक्ति धीरे–धीरे डर,

काम, क्रोध, और लोभ जैसी नकारात्मक वृत्तियों का उन्मूलन कर पाता है। और तब उसका परिचय होता है अपने अन्दर के ईश्वरत्व से। जिस रोज वह अपने अन्दर के ईश्वर की एक झलक भी देख पाता है अथवा अनुभव कर पाता है, उसी क्षण से उसका संपूर्ण जीवन बदल जाता है । अहसास कर पाता है वह उस असीम सुख और शांति का जो उसका पैतृक अधिकार है।

रहता है भीड़ में भी अन्दर से अकेला,
क्योंकि प्रभु का अनुभव पल–पल उसके साथ रहता है।
भर जाता है मन उसका एक ऐसी अद्वितीय शक्ति से
जिसकी उसने कल्पना भी नहीं की थी।
धर्म की कोई दीवार नहीं, जाति की कोई दीवार नहीं।
केवल मानवता ही उसका धर्म बन जाता है।
सबको चाहता है। सबको प्यार करता है। सबसे प्यार प्राप्त करता है।
जान जाता है कि वह ईश्वर का अंश है। प्रत्येक जड़ चेतन में भी ईश्वर को देख पाता है।

मन का भोजन

शरीर के स्वास्थ्य के लिए आज मानव सजग है। विभिन्न प्रकार के रोग आज उसके जीवन का सहज अंग बन गए हैं। विज्ञान की प्रगति ने आज मानव को भोगी और आलसी बना दिया है। तरह–तरह के डिब्बा बंद खाद्य और पेय पदार्थ हमारे भोजन में इस तरह प्रयोग होने लगे हैं जैसे सब्जी में नमक। दवाईयों का प्रयोग निरन्तर बढ़ता जा रहा है। कीटनाशक दवा, रासायनिक खाद के फलस्वरूप भोजन एक सीमा तक दूषित हो गया है। बढ़ती हुई शिक्षा के स्तर के कारण हम सब स्वास्थ्यप्रद भोजन ही ग्रहण करना चाहते हैं। व्यायाम के विभिन्न साधन भी अधिकतर लोगों की जीवनशैली का अंग बन गए हैं; परन्तु इतना सब होने के बावजूद भी रोगों की संख्या निरन्तर बढ़ती जा रही है। क्या कारण है ? प्राचीन काल में सुख आराम के साधन तो कम थे, परन्तु रोग भी बहुत कम थे। मोटर गाड़ी की अनुपस्थिति में प्रत्येक व्यक्ति पैदल ही चलता था। सुबह जल्दी उठना जीवन का एक सहज ही अंग था। स्वास्थ्य की दृष्टि से भोजन भी शाम को जल्दी खाना लाभप्रद है। शाम को भोजन के पश्चात् कहानी सुनना और सुनाना एक समय व्यतीत करने का प्रमुख साधन था। धार्मिक कहानियाँ, शिक्षाप्रद कहानियाँ, दादा–दादी बच्चों को हर रोज सुनाते थे। मन के लिए यह एक स्वस्थ भोजन है। नैतिकता के मूल्यों का अन्तर्मन में रोपण कहानी के द्वारा सहज ही हो जाता है। अधिकतर घरों में रामायण, गीता, और अन्य धर्म ग्रन्थों का पाठ भी दीपक के प्रकाश में बच्चों को न केवल स्नेह की शिक्षा प्रदान करता था अपितु हमारी

सभ्यता के मूल्यों से भी परिचित कराता था।

अनेक संतों, महापुरुषों ने भारत की पावन भूमि पर जन्म लिया है। महात्मा गाँधी, रामकृष्ण परमहंस और विवेकानंद जैसे दिग्पुरूषों के नाम विश्वभर में प्रसिद्ध हैं। श्री कृष्ण ने कुरूक्षेत्र के मैदान में गीता का सन्देश सुनाया। जो जीवन में प्रत्येक परिस्थिति में अनुकरणीय है। भारत को सोने की चिड़िया कहा जाता था। अनेक जिज्ञासु, पिपासक ज्ञान की खोज में भारत आना अपना गौरव समझते थे। इतनी महान, पावन भूमि के नागरिकों का ऐसा पतन? इसे दुर्भाग्य नहीं तो और क्या कहें? आज आवश्यकता है विज्ञान की प्रगति को अपनी सभ्यता के नैतिक मूल्यों से जोड़ने की। आज का युवा अपनी सभ्यता के गौरव को पहचाने, समझे और उसका अनुकरण करे। यह हम सब का प्रथम कर्तव्य है। पाश्चात्य सभ्यता की अंधी दौड़ में न केवल युवा अपितु प्रौढ़ और वृद्ध भी अपनी पहचान खोते जा रहे हैं। बड़ों का सम्मान, छोटों को प्यार और विश्वबंधुत्व भारत के कण–कण में समाया है। हम नये अविष्कारों का प्रयोग इन दिव्य नैतिक मूल्यों को अपने जीवन में लागू करने के लिए करें। समाचार पत्रों, फिल्म निर्माताओं और नेताओं का उत्तरदायित्व है कि वह भारत के नागरिकों को इस नैतिक पतन के गर्त में गिरने से बचाने में पूर्ण सहयोग प्रदान करें।

माँ, बालक की प्रथम और महत्वपूर्ण शिक्षिका है। अपने स्वार्थ को त्यागकर, बालक की सम्पूर्ण देखभाल एक माता सहज ही करती है। शिक्षा आज समाज में केवल स्कूल, कॉलेज तक न सीमित हो। धर्म, नैतिकता के मूल्यों का पुनर्उत्थान आवश्यक है। ईश्वर में श्रद्धा और विश्वास हमारी एक पैतृक धरोहर है। प्रत्येक धर्म में सच्चे संतों और सद्गुरुओं ने केवल प्रेम और शांति का ही संदेश दिया है। स्वयं के उत्थान के पश्चात् ही समाज सेवा संभव है। व्यक्तिगत स्तर पर भारत की स्वर्णिम धरोहर को हम विश्वव्यापी बनाएँ। योग के दिव्य संदेश को विश्व प्रसिद्ध बनाएँ। असीम शांति और सुख के इस खजाने पर प्रत्येक व्यक्ति का समान अधिकार है। इस पुनीत कार्य में प्रत्येक व्यक्ति अपना सहयोग दे सकता है। शरीर के साथ–साथ मन का भोजन भी अत्यंत आवश्यक है। मंत्रों का उच्चारण, प्रभु की पूजा किसी भी रूप में सहज ही मन को प्रसन्न, आनंदित करने में सक्षम है। और आनंद क्या हमारे जीवन का लक्ष्य नहीं है ?

प्रभु का नाम उस सर्वशक्तिमान की ही तरह सर्वशक्तिशाली है। पूर्ण श्रद्धा और विश्वास के साथ जो भी प्रभु की शरण में जाता है, प्रभु इतने दयालु और कृपालु हैं कि एक पल भी देर नहीं लगाते। महाभारत में द्रौपदी के चीरहरण से क्या श्रीकृष्ण ने उसे नहीं बचाया था? आवश्यकता है जागने की और जगाने की! अपने इन बहुमूल्य नैतिक मूल्यों का हम सब पुनर्जागरण करें और अपने जीवन को दिव्य बनाएँ। सम्पूर्ण विश्व को आलोकित करते हुए भारत का ध्वज उज्जवलता के शिखर पर स्थापित करें।

मानसिक तप और साधना

आज मानव जीवन अशांति, दुःख चिंता, से ग्रसित है। कोई विरला ही इस भयावह स्थिति को समझते हुए, इसका निराकरण कर पाता है। पैसा और केवल पैसा कमाना, अधिक से अधिक पैसे का संग्रह और प्रदर्शन आज मानव की नियति बन गई है। पैसे और झूठी शान की अंधाधुंध दौड़ में मानवता और उसके दिव्य नैतिक गुण मानो बहुत पीछे छूट गए हैं। ऐसे खोखले जीवन में भला प्रसन्नता, आनंद और शान्ति कैसे प्रवेश पा सकते हैं ? सत्संग का अभाव इस मृगमरीचिका को और भी बढ़ा देता है। रोगों का अतिक्रमण होने से निराश मनुष्य एक चिकित्सक से दूसरे चिकित्सक,एक गुरु से दूसरे गुरु के पास दौड़ते हुए ही इस बहुमूल्य जीवन को गँवा बैठता है। वह जीवन जो प्रभु की अद्वितीय कृपा से हजारों वर्षों के पश्चात् प्राप्त होता है, असमय ही काल के गाल में चला जाता है।

चारों ओर फैली हुई इस अराजकता ने भी एक व्यापार का रूप ले लिया है। तरह –तरह की पूजाएँ, अनुष्ठान, यज्ञ धर्म के लोभी ठेकेदारों का एक सुलभ व्यवसाय बन गया है। निरीह मानव उनके चंगुल में फँसकर नित्य छला जा रहा है। बहुत समय पश्चात् जब वह इस छल–कपट को समझ पाता है, तब तक बहुत समय व्यर्थ ही व्यतीत हो जाता है। शारीरिक तप ही आज मानव समझता और करता है। विभिन्न प्रकार के उपवास, पूजा, आराधना, जप उसको एक विकल्प दृष्टिगत होते हैं। अपने जीवन की त्रासदी को बदलने के लिए व्रत, उपवास, पूजा, प्रार्थना का अवश्यमेव एक महत्वपूर्ण स्थान है, परंतु केवल शारीरिक प्रयास करने से मानव साधना के दिव्य पथ पर प्रगति नहीं कर पाता। उपवास, व्रत, प्रार्थना और जप एक सीमा तक ही साधक की मदद कर पाते हैं। **मानसिक तप, शारीरिक तप से कहीं अधिक शक्तिशाली है। – श्री स्वामी शिवानन्द सरस्वती**

क्रोध, चिंता, भय, तनाव, एक साधक के सूक्ष्म को क्षत्–विक्षत् कर देते हैं। ऐसी स्थिति में प्रगति लगभग असंभव ही हो जाती है। प्रयास रत साधक अपना धैर्य खोने लगता है। सत्संग और सद्गुरु का अभाव साधना को और भी दुर्गम बना देता है। जब धैर्य और लगन धीमे पड़ने लगते हैं , तो बची–खुची प्रगति भी समाप्त हो जाती है। **सतत् प्रयास ही साधना की प्रथम और महत्वपूर्ण आवश्यकता है।** मन विभिन्न प्रकार के प्रलोभन दिखाकर साधक को इस दिव्य मार्ग से हटाना चाहता है। मन की चंचलता पर लगाम लगाना एक अत्यंत दुष्कर कार्य है। विश्वामित्र जैसे ऋषि भी मन की दुर्बलता के कारण तपस्या छोड़ बैठे थे। फिर साधारण मानव का तो कहना क्या? एक–एक करके जब मानव अपने दुर्गुणों के प्रति सजग होता है तभी मानसिक तप का प्रारंभ होता है। जिस मन को झूठ

बोलने, चोरी करने, संग्रह करने की आदत है, वह बहुत दृढ़ता से इस तप का विरोध करता है। क्रोध, तनाव और चिंता एक अनैतिक और कमजोर मन का ही प्रत्यक्ष प्रमाण हैं। अपमान, निंदा को सहन करना बहुत ही हिम्मत का काम है। अनायास ही कब क्रोध साधक को अजगर की भाँति अपनी पकड़ में लपेट लेता है, साधक स्वयं ही नहीं समझ पाता है। जरा सी भी असावधानी साधक की वर्षों की मेहनत पर पानी फेर देती है। **'अपमान और निंदा सहो, सबसे ऊँची साधना।'** – **स्वामी शिवानंद**

जब स्वामी सत्यानंद द्वारा रचित एक पुस्तक में मैंने यह शिक्षा पढ़ी तो मैं आश्चर्यचकित रह गई। बहुत विचार करने पर भी मैं इसका महत्व नहीं समझ पाई। परन्तु धीरे–धीरे इस वाक्य पर विचार करते हुए मैंने इसको व्यवहार में लाने की कोशिश की। अरे कितना कठिन है! मुझे लगा कि यह लगभग असंभव ही है जब दूसरा व्यक्ति अपनी झूठी निंदा और चुगली कर रहा हो, तो चुप रहना कितना कठिन होता है? और फिर उसको सहना उससे भी कठिन! सहने का अर्थ है उसकी मानसिक रूप से भी कोई प्रतिक्रिया न हो। परन्तु बार–बार मन में यह वाक्य गूँजता रहता, जब भी मैं अपनी पूरी शक्ति से किसी के द्वारा अपमानित होने पर उसका प्रतिकार करती। चुप रहना मेरे स्वाभव में नहीं है और मन से चुप रहना तो उससे भी कई गुना ज्यादा कठिन! अपमान की चोट कई दिनों तक मन को आहत करती रहती और बहुत सा समय इसमें व्यर्थ ही चला जाता। बहुत बार बदले के विचार भी मन में आते रहते। बदला लेने की योजनाएँ बुद्धि और मन दोनों मिलकर बनाते रहते।

और बहुमूल्य समय माया की चालों में व्यर्थ चला जाता। स्वाध्याय और सत्संग के कारण मुझे यह बिल्कुल स्पष्ट समझ में आता था कि मैं अपना समय व्यर्थ की बातों में नष्ट कर रही हूँ। पर चाह कर भी इस दुष्चक्र से बाहर आने का मार्ग मुझे दिखाई नहीं पड़ता था। आज चार वर्ष के पश्चात् प्रभु की असीम कृपा से मैं इस साधना को काफी हद तक करने में समर्थ हो पा रही हूँ और इस शिक्षा के गहन अर्थ को थोड़ा–थोड़ा समझ पा रही हूँ। क्षमा और केवल क्षमा का सद्गुण अपनाने से अपमान और निंदा की चोट काफी हद तक कम प्रतीत होती है। ऐसा मन में विचार करने से एक असीम शान्ति और प्रसन्नता का अनुभव होता है। ऐसी प्रसन्नता संसार की किसी विषय वस्तु से नहीं मिल सकती। मानसिक तप का परिणाम इतना सुखद होगा, ऐसा मैंने स्वप्न में भी नहीं सोचा था।

'वाणी का मौन, मन का मौन।' यह शिक्षा मैंने बहुत बार पढ़ी और सुनी थी, पर मुझे अभ्यास में लाना बहुत कठिन, लगभग असंभव ही लगता था। प्रभु की कृपा से कुछ मास पहले जब मैंने वाणी का मौन रखने का निर्णय लिया, तो शुरू में बहुत मुश्किल लगा। परंतु एक सप्ताह में ही मुझे इस मानसिक तप के बहुत से लाभ मिलने लगे। सबसे पहला लाभ तो

यह हुआ कि मुझे बहुत सी ऊर्जा और शक्ति का अनुभव हुआ। जो काम मैं समय और ऊर्जा की कमी के कारण चाह कर भी नहीं कर पाती थी, अब आराम से ,सरलतापूर्वक कर पाई। जब मैंने मन के मौन की तरफ घ्यान दिया, तो समझ में आया कि मन तो ध्यान के सरल अभ्यास, जैसे योगनिद्रा, अंतर्मौन में भी एक क्षण चुप नहीं रहता। सारा दिन जागते समय मन एक स्थान से दूसरे स्थान पर, एक विचार से दूसरे विचार पर उछलता–कूदता रहता है। जब इसको एकाग्र करने का प्रयास किया, तो यह एक बिगड़ैल घोड़े की तरह दौड़ लगाता है। मैं ईमानदारी से यह बताना चाहती हूँ कि मन का मौन बहुत कठिन है। वाणी का मौन भी कुछ आसान नहीं है। परंतु अभ्यास से कुछ भी असंभव नहीं, ऐसा दृढ़ निश्चय करके मैं अनथक प्रयास कर रही हूँ।

स्वामी शिवानंद ने' साधक के गीत' में लिखा है– 'सदैव सजग रहो। कभी भी स्वयं को सुरक्षित मत समझो।' इस महावाक्य का अर्थ भी मुझे अब स्पष्टता से समझ में आ रहा है। थोड़ी सी भी असावधानी होने से वाणी का मौन भंग हो जाता है। मन तो पहले से ही चंचल है। वाणी के चंचल होते ही वह और अधिक कूदने लगता है। तब बहुत समय संकल्प–विकल्प करते हुए अलग–अलग तरह की योजनाएँ बनाने मे ही व्यर्थ चला जाता है। धीरे–धीरे मैं अपने अनुभव और प्रयोगों द्वारा वाणी और मन के गहरे संबंध को समझ पा रही हूँ।

'द्रष्टा बनना' साधना का यह एक ऊँचा लक्ष्य है। द्रष्टा का अर्थ है देखने वाला। संसार में साधारणतया हम लोग दूसरों को देखते हैं। उनके गुण–दोष, शारीरिक रचना और परिवेश से प्रभावित होते हैं। यदि संपर्क थोड़ा अधिक हुआ तो उनके व्यवहार से भी परिचित हो पाते हैं। सारा समय दूसरों का मूल्यांकन करना मानव की नियति बन जाता है। अपनी मान्यताओं के अनुरूप हम दूसरों के प्रति अच्छा या बुरा चित्र बनकर राग–द्वेष में फँसे रहते हैं। जो व्यक्ति हमारे मनोनुकूल बातें या व्यवहार करते हैं वे हमें पसंद आते हैं। अर्थात् हमें उनसे राग हो जाता है। जो हमसे भिन्न होते हैं, हम उनसे मिलना भी नहीं चाहते। यही द्वेष है। राग और द्वेष के इस झूले में झूलते हुए यह बहुमूल्य जीवन परचर्चा में ही व्यतीत हो जाता है। ऐसे में भगवद् नाम का समय कहाँ मिलेगा? द्रष्टा की साधना अत्यंत सरल अभ्यास है। इसमें कोई भी प्रयत्न न करते हुए केवल स्वयं को देखना है। स्वयं को देखने का अर्थ है अपने मन को देखना। मन में क्या विचार आ रहे हैं? उनका हम पर क्या प्रभाव पड़ रहा है? हम कब दुःखी, कब अत्यधिक हर्षित हो जाते हैं? जब धीरे धीरे साधक अपने विचारों के प्रति सजग होता है, तब वह मन की गतिविधियों से परिचित होते हुए स्वयं के आंतरिक स्वरूप को समझने लगता है। जब–जब बुरे विचार आते हैं और हम सजगता के अभ्यास से उन्हें जान पाते हैं, तब हमें अच्छा नहीं लगता। हम तुरंत उन विचारों को

दबाना चाहते हैं, भगाना चाहते हैं। परंतु इस प्रक्रिया में बुरे विचार और अधिक प्रबल हो जाते हैं। इसलिए योग में इन विचारों को स्वीकार करना और उन पर कोई भी प्रतिक्रिया न करते हुए, केवल उनको देखते जाने को कहा गया है। इस संदर्भ में मुझे एक गीत याद आता है। **तेरा मन दर्पण कहलाए। भले–बुरे सारे कर्मो को, देखे और दिखाए।।**

पढ़ने और सुनने में यह सब बहुत सरल लगता है। अभ्यास करना बहुत सी बाधाओं को प्रस्तुत करता है। कोई भी अनुकूल परिस्थिति आने पर मन हर्ष के सागर में हिलोरें लेते हुए कल्पना के जगत में विचरण करने लगता है। प्रतिकूल परिस्थिति में क्रोध, विषाद, निराशा, और तनाव से ग्रसित हो जाता है। दोनों अवस्थाओं में दृष्टि लक्ष्य से हटकर संसार पर केन्द्रित हो जाती है। 'गीता' में श्री कृष्ण ने सम रहने का उपदेश दिया है। समता का अर्थ है संसार में जो कुछ हो रहा है, उसे ईश्वर की इच्छा जानकर स्वीकार करना। उससे अप्रभावित रहना। मन को शांत करने का यह एक सशक्त अभ्यास है। धैर्य और लगन से जब साधक स्वयं के व्यक्तित्व के प्रति सजग होता है, अपनी आंतरिक संरचना को जानने लगता है, तभी उसे अपनी त्रुटियाँ समझ आना प्रारंभ होती हैं। यह प्रगति का एक महत्वपूर्ण सोपान है। गलती समझ में आना, उसे पूर्णरूपेण स्वीकार करते हुए सुधारने का प्रयत्न करना, साधक का दिव्य पथ प्रशस्त करता है। जैसे एक सीढ़ी से दूसरी सीढ़ी पर चढ़ते हुए हम नीचे वाली सीढ़ी को छोड़ देते हैं, उसी प्रकार धीरे–धीरे दुर्गुणों को छोड़ते हुए, सद्गुणों की सीढ़ी पर चढ़ते जाते हैं। योग में त्याग कुछ नहीं करना है। एक कक्षा में उत्तीर्ण होने के पश्चात हम स्वतः ही दूसरी कक्षा के विद्यार्थी बन जाते हैं। उसी प्रकार दिव्य जीवन की इस यात्रा में साधक धीरे–धीरे चलता हुआ, एक सद्गुण से दूसरे सद्गुण को अपनाते हुए एक दिव्य व्यक्तित्व का स्वामी बनने में सफल हो पाता है। एक ऐसा व्यक्तित्व जो स्वार्थ वृत्ति को छोड़कर परमार्थ को ही स्वधर्म समझता है। करुणा, दया, प्रेम, जैसे दिव्य गुण उसके स्वाभव का अंग बन जाते हैं। संग्रह की वृत्ति को छोड़कर वह पूरे विश्व को अपना परिवार मानने लगता है। उसमें 'वसुधैव कुटुम्बकम्' की भावना दृढ़ हो जाती है। यह विश्व उस परमपिता परमेश्वर की अनुपम कृति है। जो मनुष्य इसको सजाने संवारने में अपना अहं गलाकर समर्पित करता है, उससे भला प्रभु कैसे दूर रह सकते हैं ? उनको तो आना ही पड़ता है ! तो आओ साधकों ! उस दिव्य पथ की यात्रा के अनुगामी बनें।

'बिन बादल के वर्षा नहीं, बिना वर्षा के उपज नहीं, बिना बीज के फूल नहीं, बिना ईश्वर कृपा के आनंद कहाँ ? बिना ध्यान के सुख कहाँ ? – स्वामी शिवानंद

यात्रा लम्बी सही, कठिन सही, धीमी सही। परंतु जैसे–जैसे साधक की पात्रता, योग्यता प्रखर होती है, ईश्वर के दिव्य गुण, आनंद, प्रसन्नता उसके व्यक्तित्व में प्रकट होने

लगते हैं। ऐसा साधक न केवल स्वयं का अपितु अनेक आत्माओं का उत्थान करने में सफल होता है। आवश्यकता है इस देह के अभिमान से ऊपर उठने की, क्षुद्र वृत्तियों को देखने की, समझने की और दृढ़ संकल्प से उनका निराकरण करने की। लक्ष्य कितना भी ऊँचा क्यों न हो, मार्ग कितना भी दुर्गम क्यों न हो, प्रभु की कृपा होते ही सब सुलभ हो जाता है। सतत् प्रयास, धैर्य और लगन साधना में ही नहीं, अपितु जीवन में भी सफलता प्राप्त करने की कुंजी है।

सकारात्मक विचार

आज विज्ञान ने अनेक प्रमाणों के द्वारा सिद्ध कर दिया है कि ध्वनि एक ऊर्जा है। ध्वनि की ही भाँति विचार भी एक ऊर्जा प्रेषित करने में सक्षम हैं। जैसे ही एक अच्छा विचार हमारे मन में आता है, हम एक सकारात्मक ऊर्जा से ओत प्रोत हो जाते हैं। यह विचार यदि हम किसी दूसरे के लिए अपने मन में लाते हैं तो हम उस व्यक्ति को भी उस सकारात्मक ऊर्जा से ओत प्रोत कर पाते हैं। यदि उस व्यक्ति की ग्राह्यशक्ति अच्छी है तो वह निश्चित रूप से उस ऊर्जा का अनुभव अपने रोम–रोम में कर पाता है।

एक नकारात्मक विचार की तरंगें, सबसे पहले सोचने वाले व्यक्ति को ही सर्वाधिक नुकसान पहुँचाती हैं। जो व्यक्ति दूसरों के लिए बुरा सोचते हैं, वो अनजाने में ही अपना बड़ा भारी नुकसान नित्यप्रतिदिन करते रहते हैं। यदि विचार में इतनी शक्ति है तो फिर शब्द में कितनी अधिक ऊर्जा और शक्ति है। यही कारण है कि नकारात्मक प्रवृत्ति के लोग अक्सर उच्च रक्तचाप, अल्सर और हृदय रोग इत्यादि बड़ी–बड़ी बीमारियों का शिकार सहज ही बन जाते हैं। अच्छे विचारों को मन में दृढ़ता से स्थापित करने के लिए नकारात्मक विचारों का जड़ से उन्मूलन करना अत्यधिक जरूरी है। जब व्यक्ति अच्छी संगति में रहता है, अच्छी पुस्तकें पढ़ता है तो अपने अन्दर एक ऊर्जा का अनुभव कर पाता है। स्वाध्याय से व्यक्ति के अन्दर मनन, चिन्तन की वृत्ति का विकास होता है। तब व्यक्ति का परिचय स्वयं से होता है। वह अपनी कमजोरियों से अवगत हो पाता है। प्रत्येक पक्ष का अवलोकन कर पाता है। जब हम दृष्टि स्वयं से हटा कर, दूसरे के पक्ष के बारे में समझने का प्रयत्न करते हैं तो मन से नकारात्मकता सहज ही कम होने लगती है।

प्रभु के दिव्य नामों (चाहे किसी भी धर्म के) का श्रवण कीर्तन अथवा कथा के रूप में निरन्तर श्रवण करने से व्यक्ति का अन्तःकरण दिव्य ऊर्जा से ओत प्रोत हो जाता है। इन सब साधनों से आंतरिक शुद्धि की गति तेज हो जाती है। श्रीमद् भागवत में हमारे ऋषियों ने शुकदेव जी से अपने कान के लिए भगवद्नाम को रसायन के रूप में प्रदान करने के लिए प्रार्थना की। औषधि तो रोग ठीक करती है, परन्तु रसायन तन और मन को टॉनिक की भाँति

पुष्ट करता है।

बुरे, नकारात्मक विचारों के प्रति सजग रहते हुए यदि व्यक्ति उनका प्रतिस्थापन अच्छे विचारों से करने का प्रयास करता है तो निन्दा, चुगली भी स्वतः ही छूट जाते हैं। ऐसा व्यक्ति सहज ही प्रभु की कृपा का अधिकारी बन जाता है। बुरे विचार आने से उनकी तरफ ध्यान न देने और मन को कार्य में व्यस्त रखने से, धीरे–धीरे अच्छे विचार ही एक दृढ़ व्यक्तित्व की नीव डालते हैं। ऐसा व्यक्ति न केवल अपने लिए, अपितु दूसरों के लिए भी ऊर्जा का स्त्रोत बनता है। ऐसे व्यक्ति को सब लोग सहज ही पसन्द करते हैं और प्यार करते हैं।

तो आओ, हम सब अच्छे विचारों की खेती करें और सद्भावना की फसल उगाएँ। एक ऐसी फसल जिसकी नीव सदाचार हो। मानवता के दिव्य मूल्यों का पुनः विस्थापन करें। दया, करुणा और प्रेम को अपने जीवन का एक सहज अंग बनाएँ। अगर शरीर से नहीं, तो विचारों से तो हम सम्पूर्ण विश्व को एक दिव्य ऊर्जा से ओत प्रोत कर ही सकते हैं। स्वयं के विचारों को नेक बनाना ही हमारा संकल्प हो । अपने व्यक्तित्व को उज्जवल बनाना ही हमारा ध्येय हो। एक ऐसा व्यक्तित्व जो जाति, धर्म और देश की सीमाओं में न बँधा हो; एक ऐसा व्यक्तित्व जो समस्त मानव जाति के उत्थान के लिए कार्यरत हो। बहुजन हिताय और बहुजन सुखायः ही हमारा दिव्य स्वप्न हो।

मन का भटकना और ध्यान

आज का शिक्षित मानव स्वयं के प्रति अत्यधिक सजग होने के कारण अल्प समय में अधिक प्राप्त करना चाहता है। जीवन की इस दौड़ में मन की शांति और प्रसन्नता मानो कहीं बहुत पीछे छूट गई है। सांसारिक लक्ष्यों पर दृष्टि जमाए, विपरीत परिस्थितियों से जूझते, बच्चों को उच्च शिक्षा प्रदान करते–करते जीवन का एक महत्वपूर्ण भाग रेत की तरह हाथ से फिसल जाता है। प्रौढ़ावस्था और वृद्धावस्था का आगमन अनेक शारीरिक, मानसिक परिवर्तनों के लिए उत्तरदायी है। अनेक प्रकार के मानसिक तनाव, चिंताएँ सहज ही रोग को जन्म देते हैं। विभिन्न कुंठाएँ, अपूर्ण इच्छाएँ और विषाद नींद न आने का प्रमुख कारण हैं। कारण को महत्व न देते हुए, आज अनेकों वृद्ध व्यक्ति नींद की गोलियों के अभ्यस्त हो चुके हैं। नींद की समस्या प्रौढ़ों में भी बढ़ती जा रही है। अनेक युवा गहन विषाद और तनाव के कारण अनेक दवाईयों पर निर्भर हो गए हैं।

ध्यान एक ऐसा सशक्त विकल्प है जो जीवन की अधिकतर मानसिक दुविधाओं और ग्रंथियों के बन्धन ढीले करते हुए अनन्त प्रसन्नता के द्वार खोल सकता है। अनेक शिक्षित व्यक्ति आज योग, ध्यान के प्रति सजग होने के कारण इसका चयन कर रहे हैं।

ध्यान के अभ्यासों में प्रमुख बाधा व्यक्ति का मन प्रतीत होता है। मन बंदर की भाँति चंचल है। प्रशिक्षण और शुद्धि के अभाव में मन ध्यान के समय अत्यधिक चंचल प्रतीत होता है। विभिन्न प्रकार के विचार (भूतकाल, वर्तमान , भविष्य) मन को निरन्तर व्यथित करते रहते हैं। जितना व्यक्ति मन को एकाग्र करने का प्रयत्न करता है, मन उतना ही विद्रोह करता है। अनेक व्यक्ति मन की चंचलता से घबराकर ध्यान को अत्यधिक कठिन समझते हुए, धैर्य खो बैठते हैं।

सतत् प्रयास , लगन और धैर्य ध्यान में सफल होने के लिए अत्यधिक आवश्यक है। वह मन जो वर्षों से आजाद है, अचानक, अनायास एकाग्र होने में असमर्थ है। इस कटु सत्य को स्वीकार प्रत्येक अभ्यासी को करना ही होगा। जिस प्रकार एक अशिक्षित व्यक्ति उच्चशिक्षा प्राप्त करने के लिए विश्वविद्यालय में चाहते हुए भी प्रवेश नहीं प्राप्त कर सकता, उसी प्रकार आरम्भ में मन की एकाग्रता संभव नहीं है। **स्वामी शिवानंद ने सेवा को अपने अष्टांग योग का प्रथम और महत्वपूर्ण सोपान बताया है।** निःस्वार्थ सेवा का दिव्य मार्ग चुनने से व्यक्ति सहज ही दूसरों के दुखों और समस्याओं से जुड़ जाता है। मन जो स्वयं पर केन्द्रित था, दूसरों के दुःख और परेशानियों का चिन्तन करने लगता है। व्यक्ति को अपनी समस्याएँ और चिन्ताएँ सोचने का समय ही नहीं मिलता है। और यहीं से दिव्य जीवन का आरंभ होता है।

योग में प्रत्याहार के अन्तर्गत अन्तर्मौन का अर्थ है "अन्तर का मौन", "मन का मौन"। अर्थात् जब विचारों की उथल–पुथल शांत होने लगे तभी व्यक्ति धारणा में सक्षम होता है। सर्वप्रथम नये अभ्यासी को अपने मन को एकाग्र करने का असफल प्रयास छोड़ देना चाहिए। अभ्यास के लिए एक निश्चित समय और स्थान का चुनाव करना अत्यावश्यक है। एक सुख आसन में बैठकर मन के विचारों को देखना चाहिए। सुख आसन का अर्थ है, एक ऐसा आसन जिसमें आपको शरीर के किसी भाग में पीड़ा का अनुभव न हो। रोगी व्यक्ति पलंग या कुर्सी पर बैठकर भी इस अभ्यास को कर सकते हैं। लेट कर ध्यान करने से शीघ्र ही तन्द्रा और नींद आ जाती है। सर्वप्रथम अपनी साँस के अनुभव में आना चाहिए। साँस को अनुभव करते हुए उसकी गिनती करते–करते मन सहज ही शान्त होने लगता है। आसन, प्राणायाम, शरीर में प्राणशक्ति की वृद्धि करते हैं, अतः आसन प्राणायाम के पश्चात् मन कम भटकता है। एक आसन में लगातार बैठने के लिए उत्तम स्वास्थ्य की आवश्यकता है।

धैर्य के अचूक अस्त्र को अपनाते हुए ध्यान के दिव्य मार्ग पर आरंभिक असफलताओं से भी व्यक्ति निराश नहीं होता। यदि ध्यान के परिणामस्वरूप एक व्यक्ति का जीवन उज्जवल हो सकता है, तो मैं भी ध्यान में अवश्य ही सफल हो सकता हूँ। ऐसा

विचार मन में आलस्य और निराशा को नहीं आने देता। सतत् प्रयास सफलता प्राप्त करने की कुंजी है। जिस प्रकार सतत् प्रयास करने से गणित जैसे विषयों को भी रोचक बनाया जा सकता है, उसी प्रकार ध्यान सहज और सरल बनाया जा सकता है। केवल आवश्यकता है जागने की। दृढ़ निश्चय का सहारा लेकर व्यक्ति यदि सतत् प्रयास करता है, तो धैर्य परिणाम अवश्य लाता है। आरंभ में व्यक्ति अपने मन के विचारों को यदि शांत भाव से अप्रभावित रहने का प्रयत्न करते हुए केवल देखता रहता है, तो वह स्वयं से परिचित हो पाता हैं। स्वयं को पहचानना, योग में ध्यान के शिखर तक पहुंचने की प्रथम अवस्था बताया गया है। मन का तो काम है भटकना, तो उसे भटकने दो ! आप दुःखी या परेशान न हो। केवल उन विचारों से अप्रभावित रहने का प्रयत्न करें । अच्छे विचार से यदि आप खुश होते हैं और बुरे विचारों से दुखी, तो आप प्रभावित हो रहे हैं। अभ्यास करते–करते ही व्यक्ति सुख और दुःख से अप्रभावित रहना सीखने लगता है।

योगनिद्रा, प्रत्याहार की एक सरल प्रक्रिया है। योगनिद्रा अनेक दबे हुए संस्कारों को निकालते हुए, सहज ही मन को शांति प्रदान करती है। मन इस अभ्यास में बहुत कम भटकता है। मन एक शक्ति बन सकता है यदि धैर्यपूर्वक उसको प्रशिक्षित किया जाए। अनेक मनीषियों ने मन की उपमा एक बिगड़े घोड़े से दी है। मन को देखते–देखते, पहचानते और प्रशिक्षित करते हुए अनेक वर्ष निकल जाते हैं। यदि प्रयास धैर्यपूर्वक किया जाता है तो सफलता निश्चित मिलती है। प्रभु कृपा पर आस्था रखते हुए, प्रभु का स्मरण करने से सफलता अवश्य मिलती है।

ध्यान और मैं, मेरे अनुभव

मैंने 1993 में योग की शरण ग्रहण की। अनेक वर्षों तक शियाटिका और कमर दर्द जिसका एक कारण स्लिपडिस्क भी था, जूझते जूझते मैं परेशान हो चुकी थी। एलोपैथिक दवाईयाँ एक स्थायी विकल्प प्रदान करने में पूर्णतया असमर्थ हैं। क्षणिक और कुछ घंटों का आराम तो दर्द निरोधक (पेन किलर) दवाएँ अवश्य दे सकती हैं, परन्तु अनेक पेट की समस्याएँ भी उभर कर सामने आती हैं। कब्ज, अम्लता (एसिडिटि), पेट दर्द जैसी अनेक समस्याएँ मुझे अत्यधिक दुःखी और तनाव ग्रस्त रखती थीं। एक आखिरी विकल्प के रूप में मैंने योग को अजमाने का संकल्प लिया। स्वामी देवशंकरानंद जी के कुशल प्रशिक्षण में धैर्य और साहस के साथ मैंने अपनी योग यात्रा प्रारम्भ की। उन्होंने मुझे विश्वास दिलाया कि सतत् अभ्यास और लगन से, मैं अवश्य ही नीरोग हो सकती हूँ। जैसे डूबते को तिनके का सहारा होता है, उसी प्रकार मैंने उनके आश्वासन का सहारा लेकर लगन के साथ पवन मुक्तासन–I प्रारम्भ किए। उन्होंने अनेक प्राणायाम जैसे भ्रामरी और

नाड़ीशोधन भी मुझे सिखाए। मैं घर में भी लगन से सुबह एक बार उन अभ्यासों को करने लगी। इसके साथ मुझे उन्होंने महामृत्युंजय मंत्र की एक माला करने के लिए कहा। यद्यपि मुझे अज्ञानतावश इस मंत्र के महत्व का ज्ञान नहीं था, तथापि गुरु आज्ञा मानते हुए, मैंने ईमानदारी के साथ मंत्र जप किया। धीरे–धीरे उन्होंने मुझे मकरासन, भुजंगासन और शलभासन सिखाए।

आश्रम में, सप्ताह में एक दिन ध्यान का अभ्यास होता था। ध्यान का अभ्यास मुझे बहुत अच्छा लगता था। साँस पर ध्यान करवाना, निरन्तर आधे घंटे तक ॐ का उच्चारण करवाना, उनका मन पसन्द अभ्यास था। कितना सरल और अच्छा लगता था ॐ उच्चारण ! प्राणायाम पर वह विशेष ध्यान देते थे। मंत्र जप के साथ नाड़ी शोधन प्राणायाम करने से मन भी नहीं भटकता। इस प्रकार शनैः शनैः मेरा शारीरिक स्वास्थ्य सुधरने लगा। मानसिक स्थिति में भी आश्चर्यजनक परिवर्तन दिखने लगे। योगनिद्रा मुझे बहुत सरल और रुचिकर लगती थी। मैं उत्सुकता से योगनिद्रा की प्रतीक्षा करती थी। एक वर्ष के पश्चात् उन्होंने सूर्यनमस्कार सिखाया। इस एक वर्ष में मेरा स्वास्थ्य एक सीमा से अधिक सुधर चुका था। सूर्य नमस्कार से मुझे असीम ऊर्जा का अनुभव हुआ। थकान तो मानो नाम मात्र को भी नहीं थी। आश्चर्यचकित हो उठी मैं, अपने इस अनुभव पर। व्यक्तिगत आलस्य के कारण मैंने 1 वर्ष बाद आश्रम आना बन्द कर दिया। परन्तु भय के वजह से मैं अभ्यास निरन्तर करती रही। परन्तु प्राणायाम ! अरे वह तो लगभग छूट ही गए। और ध्यान का तो प्रश्न ही नहीं था। 1997 में घुटने में दर्द शुरू होने के कारण, मैंने पुनः आश्रम आना प्रारम्भ किया। धीरे–धीरे नियमित अभ्यासों के साथ प्राणायाम करते हुए लाभ होने लगा। परन्तु ध्यान के अभ्यासों में मेरी रुचि बढ़ने लगी। स्वामी जी ने मुझे ध्यान के लिए अत्यधिक प्रेरित किया। उन्होंने मुझे अनेक नए और सरल अभ्यास कक्षा के समय में सिखाए। लगन और धैर्य के साथ उनके निर्देशों का पालन करते हुए, ध्यान की इस अनवरत यात्रा पर मैंने कदम रखा। अपने गुरु पर पूर्ण श्रद्धा और विश्वास रखते हुए, उनके निर्देशों का पूर्णतया पालन करने का प्रयास किया। धीरे–धीरे मुझे अपने अन्दर असीम आनन्द और प्रसन्नता का अनुभव होने लगा। कभी आनंद अधिक और कभी कम। कभी मन आलसी हो जाता तो अभ्यास न करने के कारण मैं परेशान और विचलित हो उठती। ऐसे में वह बहुत स्नेह और धैर्य से मुझे समझाते, " प्रयास करना आपके हाथ में है। प्रयास करते जाइए, परिणाम की चिंता मत करिए।" आशा और निराशा के भँवर में डूबते उतरते, मैंने कुशल गुरु के आश्वासन पर विश्वास करते हुए, प्रयास जारी रखा। उन्होंने मुझे पढ़ने के लिए योग विद्या (मुंगेर योग विद्यालय द्वारा प्रकाशित मासिक पत्रिका) दी। उनकी आज्ञा मान कर मैंने स्वाध्याय आरम्भ किया। स्वामी सत्यानंद के लेख मुझे अत्यधिक पसन्द आने लगे। अनेक

नए अभ्यासों को मैंने अपने अभ्यासों में जोड़ा, उनके लेख पढ़ने के पश्चात् । अनेक बार अहंकार के कारण भी मन विचलित रहता था । परन्तु स्वामी जी मुझे अत्यधिक प्रोत्साहित करते थे, यह कह कर, " अजी, अभी आपने क्या पाया है?" मेरी सोच आरंभ से ही आशावादी रही है । अतः उनके इस वाक्य ने मुझे प्रेरित किया । मैंने सोचा "अरे अगर अभी कुछ न पाने से इतनी प्रसन्नता और आनंद मिल रहे हैं, तो पाने से क्या मिलेगा ?" ऐसा सोच कर दृढ़ निश्चय के साथ मैंने अभ्यास जारी रखे । धैर्य रखते हुए मैं सतत प्रयास करती रही । उन्होंने मंत्र जप की महिमा मुझे समझाते हुए, मंत्र जप माला से करना सिखाया । साधना उनको विशेषतया रुचिकर लगती थी । वह स्वयं भी अनेक साधनाएँ निरन्तर करते रहते थे । समय–समय पर मंत्र जप, सुबह की कक्षा जो 5:30 से 6:30 तक थी, उसमें वो करवाते थे । उनके प्रोत्साहन स्वरूप मैंने कक्षा में भाव और श्रद्धा के साथ मंत्र जप करते हुए अनेक दिव्य अनुभव प्राप्त किए । उनकी आध्यात्मिक शक्तियाँ अत्यधिक थीं । मन की शुद्धता पर वह सर्वाधिक जोर देते थे । एक बार सुबह की कक्षा में उन्होंने 3 दिन का ध्यान शिविर लगाया । उस शिविर में मैंने उनसे अनेक प्रकार के ध्यान सीखे और सामूहिक ध्यान का भी पूर्ण लाभ उठाया । एक सप्ताह प्राणायाम का विशेष शिविर लगाकर उन्होंने हमें प्राणायाम के रहस्यों से परिचित करवाया और विभिन्न प्रकार के प्राणायाम भी सिखाए । ध्यान में मेरी बढ़ती हुई रुचि देख कर उन्होंने मुझे पूज्य गुरुदेव सत्यानंद सरस्वती द्वारा लिखित ''योग साधना'' पुस्तक पढ़ने के लिए दी । उस पुस्तक में स्वामी जी के साधकों को निर्देशित पत्रों का संकलन है । मैंने अत्यधिक रुचि के साथ एक–एक पत्र को अनेक बार पढ़ते हुए आत्मसात् करने का प्रयत्न किया । आज भी कभी–कभी मैं उसे पढ़ते हुए, प्रेरणा ग्रहण करती हूँ ।

सन् 2001 में मुझे संधिवात (रुमेटाइड आर्थराइटिस) नामक रोग ने जकड़ना आरम्भ कर दिया । जोड़ों के दर्द से परेशान होते हुए भी, मैं निरन्तर मंत्र जप करती रही, स्वामी जी के निर्देश पर । धीरे–धीरे रोग का प्रकोप इतना बढ़ा कि मैं रात –रात भर सो नहीं सकती थी, रोती और चिल्लाती रहती थी । तब स्वामी जी ने मुझे फोन पर कहा, **"आप दर्द के कारण ध्यान नहीं कर पाएँगी । पर मंत्र जप निरन्तर करती रहिए ।"** तब उस दारुण स्थिति में, जब मेरे पतिदेव मुझे पहिया गाड़ी (व्हील चेयर) पर अस्पताल ले कर जाते थे , मैंने कैसेट की मदद से ध्यान करना पुनः प्रारम्भ किया । यद्यपि अत्यधिक पीड़ा, मानसिक संताप के कारण मन बहुत भटकता था, परन्तु धैर्य और लगन से मैं हर रोज अभ्यास निश्चित समय पर करने लगी । धीरे–धीरे ध्यान के अभ्यास और पवनमुक्तासन भाग I और प्राणायाम करते–करते , मेरा मनोबल बढ़ने लगा । अन्तर में आत्मबल पुनः जागृत हो उठा । नकारात्मक सोच, चिंता, तनाव, परेशानी कम होने लगी । मैं अत्यधिक शक्ति का अनुभव करते हुए, अपनी इच्छाशक्ति के बल पर सप्ताह में दो दिन ध्यान के

अभ्यास के लिए, पुनः योगाश्रम लाठी की मदद से आने लगी । धीरे–धीरे मेरा रोग कम होने लगा और मैं पुनः ध्यान के अभ्यास स्वतः अपने खाली समय में करने लगी । ध्यान से मेरा स्वास्थ्य (शारीरिक और मानसिक) आश्चर्यजनक रूप से सुधरने लगा, काम करने की शक्ति वापिस आने लगी । मैं पुनः अपने जीवन को सामान्यतः गृहस्थी की सम्पूर्ण जिम्मेदारियाँ निभाते हुए जीने का सामर्थ्य जुटा पाई ।

मेरा प्रत्येक पाठक से अनुरोध है कि ध्यान को अपने जीवन का एक आवश्यक अंग बनाएँ । आवश्यकता है थोड़ी सी समय के अनुशासन की , धैर्य और सतत प्रयास की । प्रसन्नता और आनन्द हमारे भीतर ही हैं, ध्यान ही उस अद्वितीय खजाने की कुंजी है । सेवा के मार्ग को अपना कर ,ध्यान करते हुए, हम सब अपनी उन अद्वितीय शक्तियों को जान सकते हैं, जो हम से छिपी हुई हैं । जीवन का समग्र विकास, व्यक्तित्व का उत्थान ही योग का लक्ष्य है । आओ ! ध्यान की इस अनंत यात्रा पर कदम रखो और उस असीम आनन्द और प्रसन्नता का अनुभव करो जो तुम्हारी पैतृक सम्पति है । रोग और दुःख हमारा भाग्य नहीं है, जीवन के एक –एक पल को भरपूर जी कर, न केवल अपना अपितु सम्पूर्ण विश्व का कल्याण करो ! और "वसुधैव कुटुम्बकम्" की भावना को चरितार्थ करो ।

<u>बिना ध्यान के सुख कहाँ ?</u> – स्वामी शिवानंद

सेवा एक साधना

आज संपूर्ण मानव जाति शांति की खोज में भटक रही है । विज्ञान के सुख साधन भी उसको सुख, शांति और प्रसन्नता प्रदान नहीं कर पा रहे हैं । रोग, दुख, अशांति का सर्वत्र साम्राज्य है । विभिन्न प्रकार के उपचार शारीरिक स्वास्थ्य लाभ तो प्रदान करने में सक्षम हैं परंतु मन की प्रसन्नता ? आनंद? कहीं बहुत पीछे छूट गई है । मृगतृष्णा जैसे पानी के लिए पथिक को मरुस्थल में भटकाती है, वैसे ही विभिन्न मनोरंजन के साधन उसे क्षणिक सुख ही प्रदान कर पाते हैं । मन व्यथित और विचलित ही रहता है ।

परम गुरु स्वामी शिवानंद ने 'सेवा ' के दिव्य साधन को व्यावहारिकता के रूप में प्रस्तुत किया है । प्रत्येक सुख के अभिलाषी व्यक्ति को सेवा एक साधना के रूप में जीवन में अपनानी चाहिए । प्रतिस्पर्धा के इस युग में क्रोध व तनाव, चिंता, घृणा, ईर्ष्या जैसे दुर्गुण प्रत्येक मानव का सहज ही स्वभाव बन गए हैं । इन्हें कलियुग के दानव न कहा जाए, तो और क्या कहें ? प्रत्येक व्यक्ति इन दानवों के चंगुल से समझते हुए भी, चाहते हुए भी नहीं छूट पाता । क्रोध व तनाव जीवन का एक सहज अंग बन गए हैं । ये दुर्गुण न केवल हमारी ऊर्जा का हनन करते हैं अपितु हमारी स्वाभाविक नैसर्गिक योग्ताओं को भी पनपने नहीं देते । दुःख और केवल दुःख ही हमारा भाग्य बन गया है । अत्यधिक क्रोध, तनाव, ईर्ष्या

आदि अनेक रोगों के आगमन का कारण बनते हैं। हृदयाघात, उच्च रक्तचाप, मधुमेह और गठिया जैसे प्राणघातक रोग युवावर्ग में भी दृष्टिगोचर होते हैं। **स्वामी जी ने सेवा के सरल मार्ग को अपनाते हुए इन सब दुर्गुणों से मुक्ति पाने का सुगम मार्ग बताया है।** अपना पूरा जीवन उन्होंने सेवा में समर्पित किया। उनके अनेक शिष्य पूरे विश्व में अनथक सेवा कर रहे हैं। जब हम सेवा के इस दिव्य मार्ग का चयन करते हैं, तो मन स्वाभाविक रूप से आह्लादित हो उठता है। स्वयं की उपयोगिता का अहसास, दूसरे व्यक्ति का दुःख, अपने जीवन की त्रासदी को अवश्यमेव कम कर देता है। स्वयं से हटकर प्रत्येक मानव यदि पारमार्थिक जीवन का चयन करता है, तो उसका समय दूसरे की पीड़ा हरने में व्यतीत होता है। जो समय वह व्यर्थ की चिंताओं और तनाव में व्यतीत करता है, वह सेवा के रूप में प्रयोग करता है। समय का सदुपयोग और बहुत से आशीर्वाद निरंतर उसके जीवन की बहुमूल्य पूँजी बनते जाते हैं। अनायास ही वह प्रभु की कृपा का पात्र बनते हुए एक दिव्य जीवन व्यतीत करने लगता है। जब व्यक्ति अपने स्वार्थ को भुलाकर किसी अन्य व्यक्ति की सेवा करने में संलग्न होता है, तो मन स्वतः ही प्रफुल्लित हो उठता है। हर परिस्थिति में प्रत्येक व्यक्ति यदि दृढ़ निश्चय करे, तो अवश्य ही सेवा के अवसर खोज सकता है। जो जहाँ है, यदि वह चाहे तो सेवा का लाभ अवश्य उठा सकता है। एक शिक्षक गरीब बच्चों को निःशुल्क अथवा कम शुल्क में पढ़ा सकता है। एक वकील गरीब और निरपराध लोगों के लिए केस लड़ सकता है। एक डॉक्टर कुछ गरीब रोगियों को परामर्श और दवाईयाँ मुफ्त में दे सकता है। एक महिला जो गृहिणी है, अपने घर का काम निबटा कर गरीब बच्चों को पढ़ा सकती है। कहानी सुनाकर नैतिक मूल्यों का बीज भी गरीब बच्चों में बोना एक दिव्य सेवा है। सामूहिक पूजा का आयोजन, भोज और उसमें पिछड़े और निम्न वर्गों की भागीदारी एक दिव्य सेवा है। **मानव जाति की निःस्वार्थ सेवा ईश्वर की सबसे बड़ी आराधना है।** ईश्वर केवल मंदिर और देवालयों में घंटी बजाने से प्रसन्न नहीं होता।

'वृद्ध गरीब और रोगी मानवों की नारायण भाव(उन्हें भगवान का रूप समझकर) से की गई सेवा अनंत फलदायक है' – स्वामी शिवानंद

हनुमान जी (रामायण के प्रसिद्ध वानर) ने केवल सेवा का ही संदेश विश्व को दिया है। निःस्वार्थ सेवक प्रभु का सहज ही कृपापात्र बन जाता है। सुख, शांति, प्रसन्नता, आनंद स्वतः ही ऐसे व्यक्ति की पूँजी बन जाते हैं। तो आओ! हम सब सेवा के इस दिव्य गुण को अपनाएँ। सारे विश्व को अपना परिवार मानते हुए मानव जाति में प्रेम का एक बीज रोपित करें। यही बीज जब एक विशाल वृक्ष का रूप लेगा तो इसमें सेवा का जल और विश्व बंधुत्व और शांति के फल चारों ओर एक दिव्य वातावरण का निर्माण करेंगे।

जीवन का लक्ष्य – प्रौढ़ों के लिए

जीवन प्रभु की अनुपम कृति है। और मानव जीवन तो बहुत सौभाग्य से प्राप्त होता है। देवता भी इस जन्म के लिए तरसते हैं। चौरासी लाख योनियों को भोगने के पश्चात् ही मनुष्य योनि में आने का सौभाग्य प्राप्त होता है। और इस मानव जीवन को ज्यादातर मनुष्य व्यर्थ ही गवाँ देते हैं। खाना, पीना, सोना और मर जाना, क्या यही मानव की नियति है? केवल और केवल अपने परिवार तक सिमट कर रह गया है, मनुष्य का कर्तव्य। स्वार्थ की इस आँधी से कुछ गिने चुने लोग ही बच पाए हैं। दूसरों के विषय में सोचना, कुछ करना बहुत ही दुःसाध्य माना जाता है। इंसान धीरे–धीरे इंसानियत भूलता जा रहा है। पाश्चात्य जगत की अंधी नकल में आज बच्चे तो क्या वृद्ध भी अपने नैतिक मूल्यों को भुला बैठे हैं। ऐसे समय में कौन किसको सांत्वना दे, शिक्षा दे, यह समझना असंभव ही प्रतीत होता है।

जीवन को कैसे जिया जाए? क्या खाने–पीने और सोने के अतिरिक्त इसका कुछ और भी प्रयोजन है? केवल शरीर और परिवार का स्वार्थ पूरा करते हुए मानव आज दानव में परिवर्तित होता जा रहा है। बच्चों के लिए तो एक लक्ष्य निर्धारित करना अनिवार्य है ताकि वो उस लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए एक सुनिश्चित मार्ग पर चल सकें और भावी जीवन का निर्माण एक सफल नागरिक के रूप में कर सकें; एक ऐसा नागरिक जिस पर न केवल माता– पिता अपितु समाज और पूरे देश को गर्व हो। परंतु उम्र का एक ऐसा पड़ाव भी आता है, जहाँ व्यक्ति अपनी समस्त पारिवारिक जिम्मेदारियाँ से मुक्त होते हुए थोड़ा सा शिथिल महसूस करता है। और यह है प्रौढ़ावस्था। चालीस साल से साठ साल तक की अवस्था। जैसे–जैसे बच्चे वयस्क होते हैं उनकी आवश्यकताएँ कम होती जाती हैं। शिक्षा पूरी होने के बाद वे अपने लिए एक उचित व्यवसाय का चयन करते हुए, अपने पैरों पर खड़े होते हैं। धीरे–धीरे स्वावलंबी बन जाते हैं। और माता पिता एक असीम सुख और शान्ति से भर जाते हैं। उसके बाद शुरू होता है एक खालीपन का अहसास। बच्चों के साथ माता–पिता शारीरिक और मानसिक रूप से इतने व्यस्त रहते हैं कि उनको स्वयं के बारे में सोचने का ज्यादा समय ही नहीं मिल पाता। पर अब वो एक पक्षी की तरह अनुभव करते हैं। जिसका कोई लक्ष्य नहीं है। क्या करें? सारा समय कैसे बिताएँ? काम भी बहुत कम हो जाता है। शरीर में भी शिथिलता अनुभव होती है और विभिन्न प्रकार के परिवर्तन दृष्टिगोचर होते हैं। ऐसे समय निराशा, विषाद व्यक्ति को घेर लेता है। और इसका परिणाम रोग के रूप में सामने आता है। कुछ लोग इस खालीपन को भरने के लिए जुआ, शराब आदि का सहारा लेते हैं। और कुछ लोग भोजन के द्वारा भावनात्मक संतोष प्राप्त

करना चाहते हैं। जो भी ऐसे विकल्प चुनता है उसके दुष्परिणाम रोग (शारीरिक और मानसिक) के रूप में बाहर दिखाई देते हैं।

ऐसे समय में आवश्यकता है कि इंसान स्वार्थ को त्याग कर परमार्थ की ओर अग्रसर हो। अपने चारों तरफ दृष्टि घुमाने से उसको विकल्पों की कमी महसूस नहीं हो सकती। बीमारों, गरीबों और वृद्धों की सेवा करने से मनुष्य को अत्यन्त प्रसन्नता मिलती है। जब हम दूसरों की दयनीय स्थिति देखते हैं, तो प्रभु ने हमको कितना अच्छा जीवन प्रदान किया है, हमें एक संतोष से भर देता है। 'खाली दिमाग, शैतान का घर' जब हम केवल अपने बारे में ही सोचते हैं तो नकारात्मक विचार आते हैं या केवल हवाई किले बनाने में समय व्यतीत होता है। और दोनों परिस्थितियों में हम दुःखी रहते हैं। धीरे–धीरे दुःख , परेशानी, चिन्ता, और तनाव ही हमारा स्वभाव बन जाता है। इस लिए हमारे अपने स्वार्थ के लिए बहुत आवश्यक है कि हम संकीर्णता के इस दायरे को तोड़ें और कमजोर, अशिक्षित, रोगी लोगों की कुछ मदद करें। मदद के लिए बहुत समय या पैसों की जरूरत नहीं है। केवल दृढ़ भावना रखने से व्यक्ति सरलता से सेवा के इस दिव्यगुण को अपना सकता है।

"आत्म भाव से की गई सेवा ध्यान से भी महान है।" – स्वामी शिवानंद

निःस्वार्थ भाव से सेवा करने को भगवान श्री कृष्ण ने गीता में पूजा से भी महान बताया है। धीरे–धीरे जब मनुष्य सेवा के अवसर खोजता है तो उसे स्वयं ही मार्ग साफ दिखाई पड़ता है। शुरू में स्वार्थ भाव भी प्रबल रहता है, पर धीरे–धीरे इस दिव्य पथ पर चलते हुए, प्रभु की कृपा से भाव स्वतः ही परिवर्तित होने लगता है। उदाहरणतया मैं भिलाई योगाश्रम में एक व्यक्ति के सम्पर्क में आई जो पुरानी धार्मिक पुस्तकों का चलता–फिरता वाचनालय चलाता है। वह अस्पताल, स्कूल, आश्रम आदि में जाकर कुछ समय के लिए अपनी पुस्तकें रखता है और लोगों को इससे लाभ लेने का अवसर प्रदान करता है। एक महिला जो 70 साल की है वो अपना बहुमूल्य जीवन एक्यूप्रेशर से रोगियों की सेवा में व्यतीत करती हैं। और इस वृद्धावस्था में पूर्णतया स्वस्थ रहते हुए, खूब व्यस्त हैं और अनेकों के चेहरों पर मुस्कान लाने में समर्थ हैं। 1993 में मेरे पति के पित्त की थैली (Gall Bladder) में पथरी हो गई थी। उसकी शल्य चिकित्सा (Operation) करवाने के लिए मैं तीन महीनें अस्पताल में रही। एक वृद्ध व्यक्ति रोगियों का हाल चाल पूछने रोज आते और उनसे जो कुछ भी बन पड़ता मदद करते। मेरे लिए भी उन्होंने एक वार्डव्यॉय की व्यवस्था की जो रात को पति के पास रह सके। उनको देखकर मुझे बहुत प्रेरणा मिली और आज भी मेरे अन्तर्मन से उनके लिए स्वतः ही दुआ निकल जाती है।

उठो ! जागो ! जीवन प्रभु ने दिव्यता अर्जित करने के लिए दिया है। उसे व्यर्थ में मत गवाँओ। अपने से कमजोर, निर्धन लोगों की मदद करो। जो अपने वर्तमान की

परिस्थितियों के साथ सामंजस्य बनाते हुए, थोड़ा बहुत भी हम अपने से कम भाग्यशाली लोगों के लिए कर सकते है, अवश्य करें। और स्वयं अनुभव करें कि कितनी प्रसन्नता, आनन्द हम प्राप्त कर सकते हैं।

"मलिनों में छवि, दानव में देवत्व, मृत्यु में जीवन, जीवन में ब्रह्म का साक्षात्कार ही जीवन का विशेष लक्ष्य है।" –स्वामी सत्यानंद

स्वार्थ और सेवा

कलियुग तमस प्रधान युग है। अधिकांश मानव आज स्वार्थ के कारण चिंता, भय, निराशा, के भयंकर दलदल में फँसे हुए हैं। जिस प्रकार दलदल में फँस कर व्यक्ति चाह कर भी नहीं निकल पाता, उसी प्रकार समझ होते हुए भी, परमार्थ की डगर कठिन और असम्भव प्रतीत होती है। अनेक लोगों के जीवन में सेवा के अवसर आते हैं और चले जाते हैं और वो उसका लाभ उठाने से चूक जाते हैं। अन्य कई लोग सेवा करते तो हैं पर अपेक्षा रखते हुए सेवा का लाभ नहीं उठा पाते। अपेक्षा ही सारे दुःखों की जड़ है। व्यक्ति का स्वार्थ ही उसे दूसरों से अपेक्षा करने के लिए प्रेरित करता है। **भगवान श्री कृष्ण ने गीता में अर्जुन को निष्काम भाव से कर्म करने को प्रभु प्राप्ति का सबसे सरल उपाय बताया है।** परंतु निष्काम भाव लाना इतना सरल भी तो नहीं है। वह मन जो वर्षों से सकाम कर्म में लिप्त है, अपनी चाल छोड़ने को तैयार नहीं होता है। केवल और केवल प्रभु की कृपा से ही व्यक्ति अपना उत्थान करनेके लिए प्रयासरत होता है। अपनी इच्छाशक्ति का प्रयोग करते हुए, मन की निम्न वृत्तियों का निराकरण एक ऐसी प्रक्रिया है जो सहज नहीं हो पाती। धैर्य का प्रयोग जब अदम्य साहस के साथ व्यक्ति करता है, तभी इस मार्ग पर प्रगति संभव है। प्रभु की कृपा से मार्ग के काँटे भी फूल बन जाते हैं। जीवन में प्रकट होने वाली प्रत्येक कठिनाई को यदि हम अपनी प्रगति का एक सोपान समझें तो नकारात्मक चिंतन से सहज ही बच सकते हैं। सतत प्रयास, प्रभु दर्शन की अदम्य लालसा और धैर्य अत्यावश्यक है। निःस्वार्थ भाव का शनैः शनैः प्रत्यारोपण सम्भव है। सेवा का कोई भी रूप ईश्वर को स्वीकार्य है।

सरलता का गुण एक ऐसा गुण है, जो ईश्वर का मन सहज ही द्रवित कर देता है। सरल व्यक्ति निष्कपट और सच्चा होता है। सच्चे भाव से की गई सेवा शीघ्र ही परिणाम लाती है। सरल और सच्चे व्यक्ति को संसार में चाहे काँटों पर से गुजरना पड़े, उसे ईश्वर अपने सबसे प्यारे बच्चे की तरह अपनी गोद में उठा कर रखते हैं। और निष्काम सेवा के इस मार्ग का अनुसरण करते हुए, जब हृदय की शुद्धि होती है तो विवेक का उदय होता है। विवेक के आगमन से व्यक्ति स्वयं को सुरक्षित रखने में सक्षम होता है। अपने

जीवन का उत्थान इस मानव जीवन में ही सम्भव है । तो आओ हम इस दिव्य मार्ग का चयन करें। अपने जीवन की बगिया को मनोरम पुष्पों से सजाएँ और उन पुष्पों की सुगन्ध से सम्पूर्ण विश्व को सुवासित करें। क्या यही मानव जीवन का उद्देश्य नहीं है?

निष्काम सेवा

निष्काम सेवा कहने में बहुत सरल है, परन्तु पालन में उतनी ही कठिन। आज के युग में सेवा एक अत्यंत दुष्कर कार्य है। यद्यपि सेवा की आवश्यकता प्रत्येक व्यक्ति को प्रत्येक स्थान पर है, पर कितने लोग इसे करते हैं ? कभी–कभी सेवा करना लाभ की बजाए हानिकारक प्रतीत होता है। सेवा जिसके प्रति की जाती है, प्रायः वह गलत अर्थ निकालते हुए सेवा करने वाले से और अधिक अपेक्षाएँ करते हुए उसको परेशान ही करता है। स्वामी शिवनांद के लेख समय–समय पर योग विद्या में पढ़ने के पश्चात् मैं अर्न्तमन से सेवा करने के लिए प्रेरित हुई। सेवा की इस राह पर चलते हुए बहुत से खट्टे–मीठे अनुभव मैंने अपनी झोली में एकत्र किए । उनमें से एक मैं यहाँ लिखना चाहती हूँ – मैं एक गणित की अध्यापिका हूँ। जब एक गरीब लड़की को गणित पढ़ाने का अवसर प्राप्त हुआ, तो मैंने उसे प्रभु की कृपा समझ कर पूरी लगन से पढ़ाया। उसके पालकों के बहुत अनुरोध करने पर भी मैंने उससे कोई शुल्क नही लिया। लड़की मेधावी थी। अतः उसकी अच्छी प्रगति हुई। मुझे भी हार्दिक प्रसन्नताा का अनुभव हुआ। परन्तु धीरे–धीरे उसकी वजह से मुझे बहुत मानसिक परेशानी और तनाव होने लगा। जब उसे यह समझ आने लगा कि मैं निष्काम भाव से पढ़ा रही हूँ, तो वह इस उदारता का गलत फायदा उठाते हुए बहुत अवकाश लेने लगी। शुल्क न देने के कारण उसे मेरी कक्षा छोड़ने में कोई दुःख भी नहीं लगता था। समय–समय पर अवकाश लेने और गृह कार्य न करने के कारण उसकी प्रगति उतनी नहीं हुई जितनी हो सकती थी। मुझे यह देखकर बहुत दुःख और संताप होता था कि वह मेरी मेहनत का पूरा लाभ नहीं उठा रही थी। बहुत बार डाँटने पर भी उस पर कोई असर नहीं होता था। मैं हर तरह से उसको जीवन में ऊँचा उठाना चाहती थी। अतः मैंने उसे अंग्रेजी सुधारने में भी बहुत सहायता की। जोड़ों के दर्द के कारण मेरी तबीयत बहुत खराब रहती थी। फिर भी मैं अपनी पीड़ा विस्मृत कर उसकी सहायता करती थी। कई बार उसने मुझे Blackmail भी किया। वह मेरी कमजोरी समझते हुए मुझे धोखा देने से भी नहीं चूकती थी। धीरे–धीरे जब मुझे उसका छल–कपट समझ आने लगा, तो मैं मन ही मन बहुत व्यथित हुई। परन्तु मैंने उसकी सहायता जारी रखी और आज भी उसकी हर संभव सहायता कर रही हूँ। तीन साल उसे निःशुल्क पढ़ाने के बाद, उसी ने मुझे ज्ञान दिया कि मुझे उससे शुल्क (चाहे थोड़ा ही) अवश्य लेना चाहिए था। जब उच्च कक्षाओं में वह अन्य अध्यापकों के पास जाने लगी, तब

वह एक भी छुट्टी नहीं करती थी और गृह कार्य भी मन लगाकर करती थी। अतः अपने इस अनुभव से मैंने सीखा कि सेवा करते समय अंदर से निष्काम भाव रखते हुए उसे प्रकट नहीं करना चाहिए। कुछ न कुछ शुल्क अवश्य लेना चाहिए। चाहे वह पैसा आप किसी और की सहायता करने में लगा दें। हो सकता है कि मेरा ही ऐसा अनुभव रहा हो ! परन्तु मैंने जितने भी और प्रयत्न किए, उनमें भी छली गई। तब लगा सेवा करना क्या इतना सरल है ? वह भी निष्काम सेवा ? मानव की प्रकृति स्वार्थी होने के कारण वह सामने वाले से सदा कुछ न कुछ प्रतिदान चाहता है। ऐसे में सच्चा भाव लाना बहुत कठिन है। धीरे–धीरे जब मैं इस व्यथा से ऊपर उठ सकी, तब मुझे समझ आया कि सेवा करने के लिए भी बहुत बुद्धि की आवश्यकता है। सर्वप्रथम सेवक को अपनी सेवा में अनासक्ति लानी होगी। अनासक्ति होने पर ही हम सेवा करते हुए भी द्रष्टा बने रह सकते हैं। **"ईश्वर के सामने यदि मैं सच्ची हूँ, तो सेवा ग्रहण करने वाला यदि कपटी या दुष्ट है और सेवा का लाभ उठाने में असमर्थ है, तो यह उसका भाग्य है।"**

जब धीरे–धीरे यह भाव गहरा होने लगा और मैंने केवल कर्म पर दृष्टि रखकर फल की आशा पूर्णतया छोड़ दी, तब 'गीता' में दिया हुआ भगवान श्री कृष्ण का यह सरल उपदेश – **"कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन"** अच्छी तरह समझ आया। इस शिक्षा से मेरा मन शान्त हो गया और मैं प्रसन्नता से सेवा का कार्य कर पा रही हूँ। हमारे गुरुदेव स्वामी निरंजनानन्द सरस्वती के एक लेख, जिसमें उन्होंने **"नाहं कर्ता नाहं भोक्ता"** का भाव दृढ़ करने के लिए कहा है, ने मुझे बहुत प्रेरित किया। इस वाक्य के अभ्यास को व्यवहार में लाने का प्रयत्न करते हुए बहुत प्रसन्नता का अनुभव कर रही हूँ। सेवा तभी निष्काम हो सकती है, जब हम अपने पूर्ण अस्तित्व में अकर्ता का बीज गहराई तक रोपित करते हैं। उस बीज को ध्यान के रूप में उचित वायु, पानी, सौर–ऊर्जा, खाद आदि मिलते रहें, तभी वह बीज एक विशाल वृक्ष का रूप लेने में समर्थ होता है। साधारण अभ्यास जैसे प्रभु की सच्चे मन से पूजा, ॐ का नियमित उच्चारण, सांस पर मन एकाग्र करना, योगनिद्रा आदि भी साधक को प्रगति के मार्ग पर प्रशस्त करते हैं। प्रभु के निर्बल और दीन बच्चों की थोड़ी सी भी निष्काम सेवा अत्यधिक लाभकारी होती है। गुरु और प्रभु ऐसे में कृपा करने के लिए बाध्य हो जाते हैं। यद्यपि आरंभ में यह कठिन प्रतीत होता है, परन्तु सच्चा भाव होने से प्रभु स्वतः कृपा करते हुए मार्ग के कंटक हटा देते हैं। जब मनुष्य शान्ति व प्रसन्नता का अपने अन्तर्मन में अनुभव करने लगता है, तब उसे किसी बाह्य प्रेरणा की आवश्यकता नहीं होती। स्वयं की प्रगति के लिए सद्ग्रन्थों का स्वाध्याय व सत्संग अति आवश्यक है।

तो आओ, हम सब इस दिव्य पथ के अनुगामी बनें और अपने रोम–रोम में उस परमात्मा की दिव्य ज्योति के दर्शन करते हुए एक दिव्य जीवन व्यतीत करें । ईश्वर की

कृपा तो निरन्तर बरस रही है। केवल आवश्यकता है स्वयं को जगाने की और जागरूकता से उसे ग्रहण करने की। एक भजन के शब्द जो मुझे इस सन्दर्भ में याद आते हैं, मैं पाठकों के लिए अवश्य लिखना चाहूँगी।

दाता तेरे सिमरन का, वरदान जो मिल जाए। मुरझाई कली फिर से, इक आन में खिल जाए।।
सुनते है तेरी रहमत, दिन रात बरसती है, इक बूँद जो मिल जाये– 2
जीवन ही बदल जाए। दाता तेरे सिमरन का, वरदान जो मिल जाए।

इस गीत का एक ही पद मैं यहाँ लिपिबद्ध कर रही हूँ। निष्काम सेवा प्रभु की कृपा प्राप्त करने का सबसे सरल और सुगम तरीका है। **स्वामी शिवान्द** ने लिखा है **"प्रत्येक व्यक्ति को प्रतिदिन एक सेवा कार्य अवश्य करना चाहिए। सेवा के अवसर उत्सुकता से खोजने चाहिए। भाव के साथ निष्काम रहते हुए सेवा को सम्पन्न करना चाहिए।"** क्या निष्काम सेवा एक यज्ञ नहीं है ? यह एक ऐसा सत्कर्म है, जो मनुष्य के प्रारब्ध को पूर्णतया परिवर्तित करने में सक्षम है। तो आओ, इस सामूहिक यज्ञ के हम सहभागी बनें और अपने कर्मों की लेखनी से अपने दिव्य भाग्य की रचना करें। **"परोपकार से बल मिलता है।– सामवेद**

एक छोटी सी सरल सेवा

आज जहाँ एक ओर कलियुग का घना साया है, वहीं पर कुछ लोग ऐसे भी हैं जिनको संतों की शरण में जाने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। संतों की शरण में जाने से व्यक्ति के न केवल संचित कर्मों का नाश होता है अपितु उसके अन्दर करुणा, दया और प्रेम जैसी ईश्वरीय भावनाओं का प्रादुर्भाव भी सहज ही हो जाता है। व्यक्ति के जब अनेक जन्मों के पुण्य उदय होते हैं तब उसके अन्दर सेवा का भाव आता है। परन्तु सेवा का भाव आना ही पर्याप्त नहीं है, आवश्यक होता है कि व्यक्ति अपने भाव को कार्यान्वित भी करे। अब भला सोचने से तो रसगुल्ला हमारे मुँह के भीतर नहीं आ जाता। उसको या तो बनाना पड़ता है अथवा बाजार से लाना पड़ता है। और लाने के बाद हाथ से उठा कर मुँह में रख कर चबाना भी पड़ता है।

उसी प्रकार सेवा रूपी रसगुल्ले का स्वाद जानने के लिए कुछ पुरुषार्थ तो करना ही पड़ता है। स्वयं की प्रतिकूल वृत्तियों को थोड़ा सा तो दबाना ही पड़ता है। पिछले कई वर्षों से सेवा का भाव मन में आने के पश्चात्, मैंने अतिशय संघर्ष किया अपने लिए उपयुक्त सेवा ढूँढने का। कभी अस्पताल में कोशिश की, तो कभी गरीब बच्चों को पढ़ाया, तो कभी मानसिक रूप से विक्षिप्त बच्चों को योग उनकी पाठशाला में जाकर सिखाया। अनेक बार मुझे असफलता का सामना भी करना पड़ा। परन्तु हतोत्साहित हुए बिना मैंने प्रयत्न जारी

रखा।

सन् 2005 में मुझे ईश्वर की असीम अनुकम्पा से एक सद्गुरु की शरण प्राप्त हुई। रिखिया (झारखंड) मेरे गुरु परमहंस श्री स्वामी सत्यानंद जी की तपस्थली है। वहाँ मैंने सेवा का एक ऐसा रूप देखा जो मेरे दिल को छू गया। आसपास के ग्रामीण क्षेत्रों के गरीब बच्चों में अच्छे संस्कार पूजा के द्वारा डालना, उन बच्चों की पढ़ाई के लिए पुस्तकें और यूनिफार्म देना आदि आदि वहाँ नियमित रूप से किया जा रहा है। श्री स्वामी जी के शिष्यों द्वारा उपहार स्वरूप लाए गए वस्त्र भी, देवी प्रसाद के रूप में इन बच्चों को नितप्रतिदिन बाँटे गए।

घर वापिस आने के पश्चात् अपने आस पास के गरीब बच्चों को बुला कर मैंने योग भी सिखाना शुरू किया तथा तुलसी के चारों तरफ उनको खड़ाकर के पूजा करवानी शुरू की । इस सेवा ने , न केवल बच्चों अपितु मुझे भी एक अनिवर्चनीय आनन्द से भर दिया। प्रत्येक गृहस्थ अपनी पूजा में इन गरीब बच्चों को सरलता से शामिल कर सकता है। इसके लिए न तो अधिक रुपये की आवश्यकता है और न ही पुरुषार्थ की । अपनी ही नौकरानी की बेटी को अपने साथ बिठाकर हवन करवाने से, हम दोनों को बहुत अच्छा लगता है। इस वर्ष भिलाई में चल रहे वेदप्रचार का हवन जब हमारे घर हुआ तो उसमें 10–12 गरीब बच्चों ने हमारे मित्रों के साथ भाग लिया। आज परिवार बहुत छोटे हो गये हैं। एक या दो बच्चे ही सब घरों में रहते हैं। बड़े होकर वो भी पढ़ने, लिखने और नौकरी करने बाहर चले जाते हैं। क्या ये बहुत सार्थक नहीं होगा कि हम इन बच्चों में अपने बच्चों को देखने का एक प्रयास करें ? ईश्वर की सृष्टि में बच्चे सबसे मनमोहक पुष्प हैं। श्री स्वामी जी ने तो इन बच्चों को दैवी ऊर्जा का स्त्रोत भी बताया है।

पाठकों से मेरा अनुरोध है कि इस लेख को पढ़ने के पश्चात् मनन, चिन्तन करें। और किसी भी रूप में दूसरों का कल्याण करने की दिशा में एक कदम उठाएँ। केवल सोचने तक ही सीमित न रखें। सेवा छोटी बड़ी नहीं होती। सेवा लेने वाले को नारायण समझते हुए यदि भाव से सेवा की जाती है तो उसके आश्चर्यजनक परिणाम प्राप्त होते हैं। आज मेरे घर के पास वाले सब गरीब बच्चे न केवल गायत्री मंत्र अपितु महामृत्युंजय मंत्र भी सीख गए हैं। दुर्गा जी के 32 नाम भी कुछ बड़े बच्चों को याद हैं। महिषासुर मर्दिनी स्रोतम् भी उनको बहुत पसन्द है। महिषासुर मर्दिनी स्रोत और भजन गाना उनको फिल्मी गाना गाने से कहीं अधिक प्रिय है। मेरे बहुत से छोटे –छोटे कार्य ये बच्चे सहज ही खेल–खेल में कर देते हैं। **"आम के आम गुठलियों के दाम"** वाली कहावत अपने जीवन में, मैं चरितार्थ होते हुए देख रही हूँ।

सेवा का सुख

चिरंतन काल से अनेक संतों ने सेवा को प्रत्येक मानव के उत्थान का एक सरल, सुगम और सहज मार्ग बताया है। अनेक शास्त्रों, वेदों में भी निःस्वार्थ सेवा को सर्वोपरि बताया है। परन्तु दुर्भाग्य! कितने लोग इस बात को अपने व्यवहार में लाने का प्रयत्न करना तो दूर की बात, सोचते भी नहीं। या शायद अनेक तो जानते भी नहीं। अनेक व्यक्ति जो प्रभु की कृपा से सेवा का महत्व समझते हैं और करना भी चाहते हैं, उसमें निष्काम भाव नहीं ला पाते। अधिकतर मनुष्य सेवा के पश्चात् बदला न मिलने पर मन ही मन व्यथित होते हैं। निम्न मन व्यक्ति को प्रत्युपकार के न मिलने पर सेवा का लाभ अनुभव नहीं करने देता। प्रत्येक व्यक्ति के अंतर में दो तरह के मन का कार्य निरंतर विचारों के रूप में कार्यरत रहता है। उच्च मन व्यक्ति को ईश्वरत्व की ओर, अच्छाई की ओर प्रेरित करता है , तो निम्न मन बुराई से संबंध जोड़ने पर तुला रहता है। प्रशिक्षण के द्वारा प्रत्येक व्यक्ति उच्च मन को शक्तिशाली बना सकता है। आवश्यकता है सतत् सजगता की। जब व्यक्ति धीरे–धीरे अपने विचारों के प्रति सजग रहते हुए, उन्हें देखना प्रांरभ करता है, तो स्वयं ही निम्न मन कमजोर पड़ने लगता है। उच्च मन मानव को देवत्व की ओर ले जाता है।

सेवा का परम पुनीत उत्सव प्रत्येक व्यक्ति के जीवन को असीम आनंद और प्रसन्नता से भर देता है। कोई आवश्यक नहीं कि सेवा बहुत बड़े आयोजन करवा के ही संभव है। सेवा के छोटे–छोटे कार्य भी उतने ही महत्वपूर्ण है, जितने बड़े। उदाहरणतया अपने चारों ओर गरीब और बीमारों की सहायता करना एक अत्यंत सुखदायक अनुभव हो सकता है। आवश्यकता है केवल दृढ़ निश्चय से सेवा के अवसर ढूँढने की। किसी रोगी को सांत्वना देना भी एक बहुत बड़ी सेवा हो सकती है। एक निर्धन व्यक्ति को प्यार से भोजन कराने से अत्यधिक आत्मिक सुख मिलता है। दिखावे के लिए की गई सेवा का व्यक्ति को अधिक लाभ नहीं मिल पाता।

परम गुरु स्वामी शिवानंद ने सेवा को ईश्वर प्राप्ति की पहली सीढ़ी बताया है। सेवा एक ऐसा दिव्य अस्त्र है , जो व्यक्ति के प्रारब्ध को परिवर्तित करने में सक्षम है। स्वामी जी ने सेवा में नारायण भाव का अत्यधिक महत्व बताया है। 'नारायण भाव' का अर्थ है जिस व्यक्ति की हम सेवा कर रहे हैं, उसको प्रभु मानना, समझना। यदि व्यक्ति 'नारायण भाव' का अभ्यास करता है तो फिर स्वार्थ कहाँ ? दिखावा कहाँ ? प्रभु की आराधना तो सदैव पूर्ण तन,मन, धन से की जाती है।

परमात्मा हम सब का परम पिता है। गरीब, रोगी, दुःखी, भी हमारे भाई–बंधु हैं। उनको ईश्वर रूप में देखें और उनकी सेवा के रूप में पूजा करें, यहीं ईश्वर की सर्वोत्तम

आराधना है। उस सेवा का सुख केवल भाग्यशाली ही उठाने में सक्षम हैं। तो उठो! जागो! अपने स्वनिर्मित बंधनों को तोड़ो! 'वसुधैव कुटुंबकम्' की दिव्य भावना को अपने मन में रोपित करो। फिर प्रत्येक बालक हमारी संतान और प्रत्येक दुःखी हमारा संबंधी है। जो व्यक्ति इस दिव्य पथ का अनुगामी बनता है, ईश्वर उससे दूर नहीं रह सकता। सुख, शांति, आनंद, प्रसन्नता ऐसे व्यक्ति को सहज ही मिलने लगती है। ऐसे व्यक्ति का रोम–रोम एक अद्वितीय परम आनंद को अनुभव करता है और इसी जन्म में वह मोक्ष का अनुभव करता है।

सेवा–एक–सत्य अनुभव

जब मैं सेवा करती हूँ तो एक ऊर्जा से भर जाती हूँ ।
एक ऐसी ऊर्जा जिसे केवल महसूस कर सकती हूँ।
एक ऐसी ऊर्जा, जिसको शब्दों में बाँध नहीं सकती हूँ।
निष्काम सेवा का फल तुरन्त एक गहन शान्ति के रूप में करती हूँ।
निष्काम सेवा का फल तुरन्त एक असीम आनन्द के रूप में करती हूँ।
औरों की क्या कहूँ, अपने अन्तर के ही परिवर्तन से दिन रात आश्चर्यचकित रहती हूँ।
जिसकी सेवा करती हूँ, वो तो आशीर्वाद देता है।
परन्तु मेरा प्रभु मेरी झोली खुशियों से भर देता है।
सेवा लेने वाला दुआ दे या बद्दुआ उससे कोई फर्क अब नहीं पड़ता है।
क्योंकि मेरे अन्दर का प्रभु दिन रात स्नेह और प्यार से झोली मेरी भरता है।
उसका तो भण्डार अनन्त है। अथाह है। अपने अनुभव से अब ये समझ पाती हूँ।
मेरे थोड़े से प्रयास से ही, वह दौड़ा चला आता है। मुझे गोद में उठाता है।
और प्रयास तो बाद में , सेवा के विचार से ही तन,मन ऊर्जा से ओतप्रोत हो जाता है।
जब अपना अनुभव ऐसा पाती हूँ, तो किसी शिक्षा की आवश्यकता भी नहीं रहती है।
ऐ मानव! जाग! तू!कोशिश कर के तो देख।
स्वार्थ के दायरे से बाहर निकल के तो देख।
प्रभु तेरा जीवन खुशियों से भर देंगे।
संसार वाले भले ही तेरा मजाक उड़ाएँ, तुझे न समझें।
परन्तु प्रभु तो अन्तर्यामी हैं। घट घट वासी हैं।
सब कुछ देख रहे हैं। सब कुछ जानते हैं। वो तेरी अच्छाई की कद्र करते हैं।

तेरे जैसों पर जी जान से न्योछावर रहते हैं।
मार्ग की अनेक बाधाएँ, प्रभु स्वयं ही आकर हटाते हैं।
दामन भरते हैं तेरा फूलों से, काँटे स्वयं चुन–चुन कर उठाते हैं।
दुःख आने पर, तुझे गोद में अपनी बिठाते हैं।
स्वयं अपने कर कमलों से तेरे आँसू पोछते हैं।
ये दुनिया तो स्वार्थी हो सकती है, परन्तु प्रभु तो निःस्वार्थ हैं।
ये दुनिया तो छल कर सकती है, परन्तु प्रभु तो निश्छल हैं।
तू एक कदम चलता है, वो दस कदम तेरी तरफ आते हैं।
विश्वास न हो तो सेवा कर के देख ले।
अपने अन्तर में निष्काम भाव ला कर देख ले।
अपने अनुभव से ही मेरे कथन की सत्यता को परख ले।
तेरा अपना अनुभव बने तेरा शिक्षक, फिर न और किसी की दरकार होगी।
क्या वेद, क्या सद्ग्रंथ, सेवा और परोपकार ही तेरी तकदीर गढ़ेगी।
एक ऐसी तकदीर, जिससे पाएगा तू निर्वाण।
जीते जी इसी धरा पर अनुभव करेगा मोक्ष।
फिर कैसी मुक्ति और कैसी भक्ति?

सेवा की राह के काँटे

सेवा की राह में पथिक मिलेंगे काँटे अनेक तुझे।
मत घबराना तू उन काँटों से, क्योंकि काँटों में ही गुलाब खिलते हैं।
गुलाब खिलते हैं और मुस्कुराते हुए शोभायमान होते हैं।
ये गुलाब ही प्रभु के श्री चरणों में चढ़ते हैं और बड़े–बड़े व्यक्तियों के कोट में जड़े जाते हैं।
है गुलाब की शोभा काँटों से क्योंकि काँटे ही जंगली पशुओं से उसकी रक्षा करते हैं।
काँटे प्रमाणित करते हैं कि प्रतिकूलता में भी जीवन सम्भव है और न केवल सम्भव है अपितु पल्लवित और पुष्पित भी हो सकता है।
ए पथिक इन काँटों से मत घबराना तू क्योंकि स्वयं प्रभु आएँगें तेरे पाँव के काँटे निकालेगें।
बिछा देगें तेरी राह में फूल अपनी मोहब्बत के और जीवन तेरा गुलजार बना देंगे।
गर महकना है तुझे गुलाब की तरह तो काँटो को स्वीकार करना ही होगा।
काँटो के बीच में रहते हुए, स्वयं को उनकी चुभन से बचाते हुए,

खुद महकते हुए, सारे जग को महकाते हुए, अपना जीवन सार्थक बनाना ही होगा।
तभी तो होगा तेरा इस धरा पर आना सफल।
अपने लिए तो पशु भी जीते हैं, तुझे एक इन्सान बनना ही होगा।
दूसरों के कल्याण के बारे में सोचते हुए, उनके लिए कुछ करते हुए, तू बनेगा ईश्वर का प्यारा।
क्योंकि यही सच्ची इन्सानियत है। जो कुछ भी तेरे पास है दूसरों के साथ बाँटते हुए अपने जीवन की बगिया को महकाना ही होगा।
मत घबराना तू बाधाओं से क्योंकि प्रभु हाथ पकड़ कर तेरा तुझे बाधाओं के पार ले जाएँगे।
न केवल पार ले जाएँगे अपितु तुझे शक्तिशाली बनाएँगे।
लाँघ सकेगा तू पहाड़ों को भी, बनेगा निडर और निर्भय।
देगा अभयदान अनेकों को और बनेगा प्रेरणा स्त्रोत अनेकों के लिए।
नाम अमर हो जाएगा इतिहास में तेरा, ईश्वर की ही तरह तू पूजा जाएगा।
भरेंगे भण्डार तेरे नाम, यश और धन से। बनेगा तू आप्तकाम।

आत्म निरीक्षण–एक महत्वपूर्ण सरल साधना

आत्म निरीक्षण का अर्थ है स्वयं को देखना अन्दर से अर्थात् अपने अन्दर के मानव की प्रवृत्ति का परिचय प्राप्त करना। यद्यपि पढ़ने मे आपको यह बात निरर्थक या हास्यास्पद लग सकती है, परन्तु सबसे बड़ा सच यही है कि हम दर्पण में तो रोज सुबह स्वयं को देखते हैं,परन्तु अपने अन्तर को नहीं देख पाते हैं। योग साधना में व्यक्ति के आन्तरिक परिवर्तन पर ही अत्यधिक बल दिया गया है। रोज रात को व्यक्ति यदि अपने समय के 10 मिनट इस साधना में व्यतीत करता है तो धीरे–धीरे उसे अपनी कमजोरियों और गल्तियों का अहसास होने लगता है। प्रत्येक व्यक्ति के अन्दर दो मन हैं। एक उच्च मन जो ईश्वर का अंश है जो व्यक्ति को सेवा, प्यार, दान और करुणा के मार्ग की ओर प्रेरित करता है; एक नीचा मन जो व्यक्ति को निन्दा, चुगली, और बुरे कामों की ओर प्रेरित करता है। आत्मनिरीक्षण की साधना में व्यक्ति का उच्च मन धीरे–धीरे शक्तिशाली होने लगता है और निम्न मन कमजोर पड़ने लगता है। उच्च मन की शक्ति बढ़ने से व्यक्ति अपने अन्दर एक नूतन सुख और ऊर्जा का अनुभव करता है। प्रत्येक व्यक्ति अपने जीवन में सुख और सतत् आनन्द ही तो चाहता है।

तो आओ इस सरल अभ्यास के द्वारा हम स्वयं के लिए सतत् आनन्द के मार्ग का द्वार खोलें। यह एक ऐसा मार्ग है जहाँ पग–पग पर प्रभु की दिव्य कृपा पथिक को ओतप्रोत करते हुए, एक दूसरी दुनिया में ही पहुँचा देती है। इसी धरा पर रहते हुए वह स्वर्ग के सुख भोगता है और इन सुखों में डूबते उतरते मुक्ति की कामना भी त्याग देता है।

आत्म निरीक्षण

(स्वयं को जानना पहचानना)

क्र.	प्रश्न	दिनांक
1.	आज मैं कितने बजे सो कर उठा ?	
2.	आँख खुलते ही सबसे पहला काम मैंने क्या किया ? (अ) प्रभु का नाम लिया (ब) मंत्र उच्चारण किया (स) चिन्ता तनाव या क्रोध किया	
3.	सुबह उठकर अपनी आँखों को कितनी बार धोया ?	
4.	दिन में मैंने, कितनी बार झूठ बोला ? और क्यों ? झूठ बोलने की स्वयं को क्या सजा दी ?	
5.	दिन में मैंने कितनी बार क्रोध किया ? और क्यों ?	
6.	आज दिन में कितनी बार निन्दा अथवा चुगली की ?	
7.	क्रोध करने की स्वयं को क्या सजा दी ?	
8.	क्रोध करने और झूठ बोलने और निन्दा करने के पश्चात् मेरा मन दुःखी हुआ या सुखी ?	
9.	आज मैंने बिना बदले की आशा के, कितने लोगों की मदद की ?	
10	आज कितने घण्टे टी. वी. देखा? और क्यों?	
11	आज कितने घण्टे कम्प्यूटर पर बिताए ? और क्यों ?	
12.	आज कितना समय फोन पर या अन्यथा व्यर्थ गप्प करने में बिताया?	
13.	आज आसन, प्राणायाम में कितना समय बिताया ?	
14.	आज कितना समय कीर्तन सुना ?	
15.	क्या आज मंत्र लेखन किया?	
16.	आज मैंने कितनी गल्तियाँ की?	
17.	क्या मैं बहादुरी से अपनी गल्तियाँ स्वीकार कर पाता हूँ?	
18.	आज मुझे कितनी बार तनाव और चिन्ता हुई और क्यों ?	
19.	आज मुझे कितनी बार डर लगा और क्यों ?	
20.	क्या प्रत्येक कार्य को आज मैंने आत्मविश्वास से किया ? यदि नहीं, तो क्यों ?	

क्र.	प्रश्न	दिनांक
21.	आज कितना समय अच्छी पुस्तक पढ़ने में बिताया ?	
22.	कौन सा अपना अवगुण आपको सबसे अधिक दुःख देता है ?	
23.	क्या सोने के समय मेरा मन प्रसन्न और शांत है ?	
24.	आज दिन में कौन सा अच्छा स्वास्थ्यप्रद भोजन किया और कौन सा हानिकारक भोजन किया ?	
25.	मेरा सोने का समय कितने घण्टे है ?	

भोग से योग की यात्रा

आज का युग भोग का युग है। चारों ओर व्याप्त अराजकता और दुःख, भोग के निःस्सीम होने का एक वृहद् (बहुत बड़ा) परिणाम है। भोग स्वयं में न तो हानिकारक हैं और न ही वर्जित । ईश्वर की सत्ता में प्रत्येक चेतन और अचेतन कृति का एक महत्वपूर्ण स्थान है। परमात्मा एक दिव्य रचनाकार है जिसकी थाह बड़े–बड़े ऋषि मुनि भी नहीं पा सके, तो फिर साधारण मानव का तो कहना ही क्या ? ईश्वर की रचित प्रकृति में पशु–पक्षी, वृक्ष और पौधे अपने आप में अनुपम और अद्वितीय हैं। प्रत्येक की इस सृष्टि में भिन्न–भिन्न उपयोगिता है। जिस प्रकार माता–पिता अपने सब बच्चों के समग्र विकास के लिए सुविधाएँ प्रदान करते हुए, उन पर संयम का अंकुश लगाते हैं, उसी प्रकार वह ईश्वर भी हमारा परमपिता है। उसने हमें एक निश्चित प्रयोजन के लिए इस पृथ्वी पर भेजा है। और हम सब यदि ईश्वर को याद करते हुए, उसके बनाए हुए नियमों का पालन करते हुए अपना जीवन व्यतीत करते हैं तो अवश्य ही अपना पूर्व निर्धारित लक्ष्य प्राप्त करते हुए एक दिव्य जीवन व्यतीत करने में समर्थ होते हैं।

साधारणतया योग की परिभाषा वैराग्य से जोड़ी जाती है। वैराग्य योग की अन्तिम परिणति हो सकती है परन्तु बाधा नहीं। पर यह अन्तिम अवस्था प्राप्त करना सरल नहीं है और प्रत्येक योगाभ्यासी का लक्ष्य भी नहीं है। ईश्वर की इस सृष्टि में विभिन्न प्रकार के भोगों के साधन उपलब्ध हैं। प्रत्येक व्यक्ति अपने कर्मों के अनुकूल अपने भाग्य की रचना करता है। अच्छे कर्मो का अच्छा परिणाम और अच्छा जीवन। बुरे कर्मों का परिणाम सामान्यतः निर्धनता, रोग और भीषण दुःखों के रूप में सामने आता है। धन का उपार्जन, उपयोगिता और वितरण कदापि हानिकारक नहीं है। जीवन में प्रत्येक सुख साधन मानव के उपयोग के लिए ईश्वर प्रदत्त हैं। अति सर्वत्र वर्जयेत। भोगों की अतिरेकता, उनमें

लिप्तता ही संग्रह और स्वार्थ का प्रमुख कारण है। उदाहरणतया यदि भोजन को स्वादिष्ट बनाते हुए शरीर की आवश्यकता से अधिक खाया जाए तो वह निश्चित रूप से रोग का कारण बनता है। मधुमेह, उच्चरक्तचाप और हृदयघात जैसे अनेक रोग, भोग की विकृति का ही परिणाम हैं। **"योग जीवन से भागना नहीं, जागना सिखाता है।"**

—स्वामी निरंजनानंद सरस्वती।

जब व्यक्ति योग की शरण में आता है, चाहे कारण कुछ भी क्यों न हो, तब धीरे–धीरे अपने व्यक्तित्व से जुड़ने लगता है। यदि दीर्घकाल तक योगाभ्यास और प्राणायाम एक कुशल योग शिक्षक के निर्देशन में करता है, तो स्वतः अपने जीवन में परिवर्तन बाह्य और आंतरिक दोनों परिलक्षित होने लगते हैं। योग रोग के कारण को प्रमुख मानते हुए कारण के निदान का मार्ग निर्देशित करता है। यदि अत्यधिक भोजन का कारण मानसिक विषाद या भावनात्मक असंतोष है तो योग प्राणायाम, साँस पर ध्यान और शिथिलीकरण को भी उतना ही महत्वपूर्ण स्थान प्रदान करता है जितना आसन को। जब व्यक्ति अपने अन्तर से सम्बन्ध स्थापित करने में सक्षम होता है, तब वह अपनी दिव्य पैतृक धरोहर के प्रति सजग होता है। ईश्वर ही उसका परमपिता है, यह बात धीरे–धीरे अपने अनुभव से स्पष्ट होने लगती है। स्वयं की विशेषताओं को समझने लगता है और अपने व्यक्तित्व को निखार पाता है। अपने दुर्गुणों के प्रति सजग होते हुए उन्हें सद्गुणों से विस्थापित करने का एक सफल प्रयास करता है। सद्गुण अर्जित करते हुए संयम उसका सहज स्वभाव बन जाते हैं। शरीर, मन और भावनाओं का संतुलन स्थापित होता है। शुभसंकल्पों का अवतरण जीवन में स्वतः होने लगता है। और यही वह बिंदु है जहाँ से दिव्य जीवन जीने की सुखद यात्रा प्रारम्भ होती है। दया, क्षमा और नम्रता जैसे दिव्य गुण व्यक्ति की सम्पत्ति बन जाते हैं। विश्व प्रेम की भावना उदय होने लगती है। और मानव भोगों के मध्य रहते हुए भी, उनका आवश्यकतानुसार उपयोग करते हुए उनसे पृथक अनुभव करता है। निष्काम और निःस्वार्थ सेवा करते हुए, विश्वबंधुत्व की भावना से ओतप्रोत ऐसा मानव अपना सर्वस्व परहित में लुटाने से भी नहीं चूकता। प्रवृत्ति से निवृत्ति का मार्ग व्यक्ति का स्वयं से योग करने का दिव्य पथ प्रशस्त करता है।

उठो! जागो! देर न करो, योग की दिव्यता को समझते हुए उसे आत्मसात करने का प्रयत्न करो। योग के इस दिव्य मार्ग का चयन करते हुए जीवन स्वयं ही दिव्य हो जाता है। एक ऐसा दिव्य जीवन जो अपनी आभा से सम्पूर्ण विश्व को आलोकित करे और भारत को पुनः सफलता के शिखर पर ले जाए।

गृहस्थों के लिए मेरा एक संदेश

आज गृहस्थ हैरान हैं, परेशान हैं, बदलते हुए कलियुग की चाल से।

बढ़ती हुई मँहगाई, बढ़ता हुआ भ्रष्टाचार, बढ़ता हुआ आतंकवाद।

है चारों ओर आंतक और भय का वातावरण।

प्रतिस्पर्द्धा के इस युग में बच्चों के भविष्य के लिए चिंता, तो कभी खुद रोगों से लड़ने की दुविधा।

कहाँ जाएँ? क्या करें? कैसे सुकून पाएँ? है मिलावट खाद्य पदार्थों में। है मिलावट आज धर्म गुरुओं में भी।

कैसे एक सद्गुरु पाएँ? कब सद्गुरु की शरण में जाएँ?

जब गृहस्थी के सब झंझट मिट जाएँगे, तब ही भगवान की भक्ति करेंगे।

अधिकांश गृहस्थ ऐसा ही सोचते हैं और ऐसा ही मानते हैं।

बच्चे तो पंछी बन के उड़ जाएँगे, फिर उनको ये दिव्य संस्कार कहाँ से देंगे?

ऐसा विचार उनको आता नहीं क्योंकि रात दिन की भागदौड़ से सही सोचने का समय मिल पाता नहीं।

पालते हैं जब बच्चों को केवल धन कमाने की मशीन बना कर।

तो सेवा का सुख बुढ़ापे में कहाँ से पाएँगे?

बच्चों की मिट्टी नरम है। उसमें संस्कारों के बीज रोपित करो।

जब ये बीज प्रस्फुटित होंगे तो एक विशाल वृक्ष का रूप लेंगे।

नियमित सत्संग के द्वारा ही उनके अवगुण रूपी काँटे उत्स्खलित होंगे।

कीर्तन की दिव्य तरंगों का मिलेगा पोषण जब बच्चों को तो कभी भी गुमराह वो नहीं होंगे।

नहीं पड़ेंगे बुरी संगति में, नहीं करेंगे बुरे कर्म। बनाएँगे घर को ही मन्दिर जिसमें माता पिता देवता होंगे।

अतः गृहस्थ के लिए आवश्यक है कि खुद सत्संग करे।

धन की अपेक्षा अपने बच्चों को सत्संग और सद्विचारों की धरोहर प्रदान करे।

जब बच्चे का व्यक्तित्व सुंदर होगा अन्दर और बाहर दोनों से।

तभी तो वह बनेगा एक सुदृढ़ नीव घर की, परिवार की, और समाज की।

ऐसे बच्चे ही बनेंगे राष्ट्र के नवनिर्माता और नव रक्षक।

ले जाएँगे भारत को उन्नति के शिखर पर और करेंगे भारत को पुनः स्थापित विश्व नेता के रूप में।

तब ही होगा माता पिता का सर गर्व से ऊँचा।

मत बनो तुम भोगों के गुलाम। जो तुम आज करोगे, उसी का फल भविष्य में पाओगे।

अच्छे कर्म करोगे तो तुम्हारे व्यवहार से बच्चे भी अच्छे कर्म की शिक्षा ग्रहण करेंगे।

कर लो खेती अच्छे संस्कारों की । पाओगे फसल अनन्त सुख और आनन्द की।

राह के काँटे भी फूलों में बदल जाएँगे, जिस रोज तुम परोपकार कर पाओगे।

अच्छे बनो, अच्छा करो, यही है महामंत्र आज के युग का।

प्रभु नाम का आधार ले लो। अच्छे कर्मो के संस्कार दे दो।

सहज ही निर्वाण पा जाओगे। प्रभु की अनन्त कृपा के अधिकारी बन जाओगे।

भर जाएगा जीवन तुम्हारा अनन्त सुख और शान्ति से ।

दुःखों को भी फिर हँसते हँसते झेल जाओगे।

कैसा सुख ? और कैसा दुःख? दोनों की ही मिटेगी वासना, कामना।

कामना के मिटते ही, अपने अन्दर के अनन्त शांति के स्रोत से जुड़ जाओगे।

जान जाओगे कि सुख और आनंद बाहर की विषय वस्तु में नहीं, अपितु तुम्हारे अन्दर ही है।

उठो ! जागो ! अपने बच्चों को दिव्य संस्कारों से भरो। अपना जीवन सँवारते हुए अपने जीवन में प्रभु प्रदत्त इन कलियों को , सुन्दर फूल बनने का एक अवसर दो।

ये फूल तुम्हारे आँगन में खिलेंगे और अपनी महक से संपूर्ण जगत में तुम्हारी कीर्ति को फैलाएँगे।

मिलेंगे इस राह में तुमको राही अनेक, जो तुम्हें इस राह से हटाएँगे।

सोचना तुम्हें है। निर्णय तुम्हें करना है कि तुमको क्या चाहिए अनन्त सुख या शाश्वत दुःख ?

इतिहास के पन्नों पर तुम्हारा नाम सुनहरे अक्षरों मे लिखा जाएगा।

हो जाओगे अमर जीते जी ही। यश, कीर्ति और सुख अनन्त, असीम, अथाह पाओगे।

परमहंस स्वामी निरंजनानन्द सरस्वती द्वारा प्रदत्त

दैनन्दिनी साधना

(आरोग्य प्रदायक मन्त्र)

महामृत्युंजय मन्त्र (11 बार)

ॐ त्र्यम्बकं यजामहे सुगन्धिम् पुष्टिवर्धनम्।
उर्वारुकमिव बन्धनात् मृत्योर्मुक्षीय मामृतात्।।

***

(प्रतिभाओं के जागृत करने वाला मंत्र)

गायत्री मंत्र (11 बार)

ॐ भूर्भुवः स्वः तत्सवितुर्वरेण्यं।
भर्गोदेवस्य धीमहि धियो यो नः प्रचोदयात्।।

***

(दुर्गतियों को दूर कर आत्म बल बढ़ाने वाला मंत्र)

दुर्गाद्वात्रिंशन्नाममाला (3 बार)

दुर्गा दुर्गार्तिशमनी दुर्गापद्विनिवारिणी।
दुर्गमच्छेदिनी दुर्गसाधिनी दुर्गनाशिनी।।
दुर्गतोद्धारिणी दुर्गनिहन्त्री दुर्गमापहा।
दुर्गमज्ञानदा दुर्गदैत्यलोकदवानला।।
दुर्गमा दुर्गमालोका दुर्गमात्मस्वरूपिणी।
दुर्गमार्गप्रदा दुर्गमविद्या दुर्गमाश्रिता।।
दुर्गमज्ञानसंस्थाना दुर्गमध्यानभासिनी।
दुर्गमोहा दुर्गमगा दुर्गमार्थस्वरूपिणी।।
दुर्गमासुरसंहन्त्री दुर्गमायुधधारिणी।।
दुर्गमांगी दुर्गमता दुर्गम्या दुर्गमेश्वरी।
दुर्गभीमा दुर्गभामा दुर्गभा दुर्गदारिणी।।